।। हरि:ॐ ।।

पूज्य श्रीमोटा

जीवित नर सेएँ

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सूरत।

।। हरि:ॐ ।।

जीवित नर सेएँ

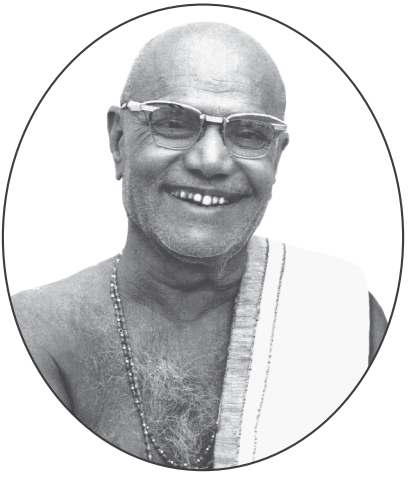

श्रीमोटा

श्रीमोटा की पावन वाणी

: संकलन :
श्री इन्दुकुमार देसाई

: अनुवाद :
रजनीभाई बर्मावाला 'हरि:ॐ'

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सूरत।

।। हरि:ॐ ।।

प्रकाशक :
(श्रीमोटा), हरि:ॐ आश्रम,
कुरुक्षेत्र महादेव मंदिर के पास,
जहाँगीरपुरा, सूरत - ३९५००५
दूरभाष : ०२६१-२७६५५६४। २७७१०४६
भ्रमणभाष : +९१ ९७२७७ ३३४००
e-mail: hariommota1@gmail.com
website: www.hariommota.org

© हरि:ॐ आश्रम, सूरत

आवृत्ति	वर्ष	प्रतियाँ
प्रथम	२०२१	---
पृष्ठ :	०१ से १०७	
कीमत :	रु. ...../-	

प्राप्तिस्थान :
हरि:ॐ आश्रम, सूरत - ३९५००५
हरि:ॐ आश्रम, नडियाद-कपडवंज, रोड, जूना बिलोदरा,
पो. बो. नं. - ७४, नडियाद-३८७००१
भ्रमणभाष : ७८७८० ४६२८८

अक्षरांकन/मुद्रक :
प्रोम प्रिन्टर्स,
अे-४, उद्योगनगर, नवसारी - ३९६ ४४५
दूरभाष : (०२६३७) २५५७७१
e-mail: promserve@gmail.com

।। हरि: ॐ ।।

श्रीमोटा ने अपने देहत्याग के थोड़े दिनों पहलें गुजरात के प्रखर साक्षर विद्वान श्री अनुपमराय भट्ट के साथ उत्तमोत्तम सत्संग किया। वह सत्संग श्री रमेशभाई भट्ट और श्री इन्दुकुमार देसाई की प्रत्यक्ष हाज़री में हुआ और ध्वनिमुद्रित कर लिया गया। पूज्य श्रीमोटा की उस पावनवाणी को हिन्दी में अनुवाद करके पुस्तकरूप से यहाँ प्रस्तुत किया है। जिज्ञासु साधक इसका लाभ जरूर लें।

ट्रस्टीमंडल

हरि: ॐ आश्रम, सूरत।

।। हरि: ॐ ।।

अनुक्रमणिका

१. जीवित नर सेएँ ०५
२. निद्रा में सभानता कैसी हो ? ०७
३. जपयज्ञ सभी यज्ञों में श्रेष्ठ.....०९
४. समकालीन संतों में पू. श्रीमोटा का विशिष्ट प्रदान.....६४
५. आरती.....१०२
६. साधना-मर्म १०३
७. पूज्य श्रीमोटा के जीवन का परिचय १०५

।। हरि: ॐ ।।

१. जीवित नर सेएँ

जिज्ञासु : मैंने पढ़ा है कि श्वास-प्रश्वास यह काल का खेल है। यदि अविद्या का नाश होता है, साक्षात्कार होता है तो श्वास-प्रश्वास की क्रिया नहीं रहती। श्वास-प्रश्वास का कारण चित्त का विक्षेप है और विक्षेप के कारण चैतन्य की प्राप्ति नहीं होती।

मेरा प्रश्न यह है कि क्या साक्षात्कार संपन्न व्यक्ति को श्वास-प्रश्वास की क्रिया नहीं रहती है ? वायु इड़ा और पिंगला के मार्ग से हटकर सुषुम्णा के मार्ग में प्रवेश करता है, तब सभी विकल्पों का शमन हो जाता है तो योगी के प्राण की सतत कुभंक की अवस्था रहा करती है ?

साधना में अंतिम लक्ष अजपाजप साधन है, जिसे अजपा गायत्री कहते हैं। अजपा साधन के बारे में आपको पूछने की इच्छा होती है। आप इस विषय पर उद्‌बोधन करोगे ?

जीवदशावालों की और अजपाजपवालों की प्रक्रिया अलग है।

श्रीमोटा : अजपाजप के विषय में मैं कह सकता हूँ कि अजपाजप होता है, तब श्वास यह जो है, वह **जीवदशा** में हमारी श्वास की जो प्रक्रिया होती है, उससे उलटी प्रक्रिया यमुना की गति उलटी होती है, ऐसा कह सकते हैं। वैसा ! उस तरह श्वास की गति उलटी होती है और वह जो श्वास चलता है, वह प्राण के आधार पर चलता है, ऐसा कह सकते हैं हम, किन्तु वह प्राण है। साक्षात्कार पश्चात् **जीव**दशा का प्राण नहीं रहता। चेतन का प्राण होता है। इससे वही श्वासोच्छ्‌वास की प्रक्रिया यही **जीव**दशा जैसी उनकी (साक्षात्कारी व्यक्ति की) नहीं होती।

उदाहरणार्थ मेरा शरीर है या **अ** का शरीर ऐसा कहो न भाई, मेरा कहना व्यर्थ है। अनेक रोगों से पीड़ित हो तो भी उसका जो श्वास, उसकी जो प्रक्रिया है, वह अलग प्रकार की है। डाक्टर उसे जाँचे तो भी उसको उसका अनियमितपन लगे।

उदाहरणार्थ मैं आज कहूँ मेरी नाड़ी अनियमित है। कोई भी जाँच कर ले, कभी भी। अब अमुक स्थिति में अमुक प्रकार की हो। अनेक

प्रकार के निमित्त मिलते हैं। उस – उस प्रकार से शरीर की प्रक्रिया होती है। यह बुद्धि से समझ सके ऐसी बात है। अत्युक्ति इसमें है नहीं। तो अलग-अलग प्रकार के निमित्त मिले उस-उस प्रकार की उसके शरीर की स्थिति हो और शरीर की स्थिति अनुसार श्वास-प्रश्वास हो। उस प्रकार से उसके अनुसार नाड़ी Fluctuate हो। उसका Fluctuating होता है बाद में निश्चितपन कुछ भी नहीं। कि इसी प्रकार का शरीर, इसी प्रकार का श्वासोच्छ्वास रहना चाहिए। ऐसा हो सकता ही नहीं। असंभव। किन्तु वह कब कि भगवतमय हो जाय तब। निरन्तर अजपाजप हो तब।

।। हरि:ॐ ।।

२. निद्रा में सभानता कैसी हो ?

अजपाजप यानी कि निरंतर जप। (सभानता) Awareness उसकी हमेशा के लिए। निद्रा लेता हो तो भी उसकी Awareness। निद्रा लेता हो। शरीर उसका निद्रा लेता हो, किन्तु उसकी सभानता टूटती नहीं। उसकी भगवान संबंधी सभानता जाग्रत। शरीर निद्रा लेता हो, किन्तु निद्रा उसकी **जीव**दशा जैसी नहीं। निंद्रा उसकी कुत्ता जैसी। एकदम Alert। थोड़ी-सी आवाज हो तो भी जाग जाता। किन्तु वह पत्थर जैसा पड़ा हो तो पड़ा भी रहे। किन्तु बातचीत होती हो, तब वह निद्रा लेता हो। नथुने, बोलते हों और बातचीत नजदीक के व्यक्ति करते हो और यदि उसमें उसका निमित्त हो तो शब्द-शब्द आपको कह सकता है। निद्रा लेता हो तो भी। पास के दो व्यक्ति बातचीत करते हो और यदि उसमें उसका निमित्त हो तो। निमित्त यदि ना हो और बात करते हो तो कुछ ख्याल नहीं आता। किन्तु यदि उसे कोई विशेष कारण यदि हो, उन बातों में वह स्वयं जुड़ा हुआ हो तो उन बातें आपको अक्षरश: सुना सके और उसके नथुने बोलते हों। इस प्रकार का सब पलटा हुआ होता है उसका।

जिज्ञासु : श्वास - प्रश्वास की क्रिया चालू रहती सही ?

श्रीमोटा : चालू रहती न। अन्यथा तो मर जाय। श्वास तो चलता रहता है। नथुने चलते हैं। श्वास चलते उसके। फेफड़े हो तो श्वास तो चलते ही न।

चित्त का विक्षेप बंद हो, किन्तु श्वास-प्रश्वास की क्रिया रहती है।

जिज्ञासु : मेरे पढ़ने में ऐसा आया है कि चित्त का विक्षेप बंद होने के बाद श्वास-प्रश्वास की क्रिया नहीं रहती है।

श्रीमोटा : चित्त का विक्षेप बंद हो जाय तथापि श्वास उसका तो रहता है। यह अगर शास्त्रों ने कहा हो तो शास्त्र गलत। यह तो बुद्धि से ही सोचो न। क्यों शास्त्र को लेने जाते हो ? फेफड़े हैं चेतन के, चेतन का अनुभव हुआ है, उसके वे फेफड़े हैं। फेफड़े हों तो श्वास आएगा ही। किन्तु उसका श्वास हमारे से अलग प्रकार का। हमारे फेफड़े, हमारे श्वास, काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि हो उस-उस प्रकार के हो। काम का विचार हो, तब अलग प्रकार का। मोह का विचार हो, तब अलग प्रकार का।

लोभ का विचार हो, तब अलग प्रकार का। वासना का विचार हो, तब अलग प्रकार का। इस तरह हमारे में **जीव**दशा में होता है।

चेतन के अनुभवी का श्वास अलग होता है। तो उसमें ऐसा निमित्त के प्रकार का होता है। उसमें भी श्वास हो। एकान्तरण हुआ करे। किन्तु उसका श्वास फिर **जीव**दशा का नहीं रहता। चेतन का संचार है वह। इससे उसे यों कहते हैं कि उसे श्वास नहीं रहता ऐसा कोई प्रश्न उड़ाता हो भले उड़ाए। किन्तु उसे श्वास रहता है। उसे फेफड़े हैं, हृदय है और श्वास तो फिर रहता ही है। उसे आँख हैं, नाक है, कान हैं। दूसरी सब इन्द्रियाँ उसकी बेकार नहीं हो जाती। किन्तु **जीव**दशा की इन्द्रियाँ की तरह उसकी इन्द्रियाँ काम नहीं करती होती। यह मैं समझा हूँ, वह मेरी यह बात है। किन्तु उसमें flaw हो, तर्कदोष हो तो कहो मुझे।

जिज्ञासु : अजपाजप जो कहते हैं, वह सरल से सरल साधन है ?

श्रीमोटा : सरल से सरल साधन है। ये सब उनके प्रकार के *'ये यथा मां प्रपद्यन्ते'* (गीता ४/११)। यहाँ 'यथा' यानी अलग-अलग प्रकार के साधनों। 'यथा' का अर्थ वही है। अलग-अलग प्रकार के साधनों द्वारा जो मुझे भजता है। कि सभी साधनों में जप श्रेष्ठ है। मैं नहीं कहता गीतामाता कहतीं हैं। गीता तो authority है हमारी। सभी स्वीकार करते हैं। हिन्दू संस्कृति में सब संप्रदाय हैं। सभी संप्रदाय गीता का प्रमाण मानते हैं।

।। हरि: ॐ ।।

३. जपयज्ञ सभी यज्ञों में श्रेष्ठ

सभी यज्ञों में मैं जपयज्ञ हूँ। जप करो तो जप सतत कर देना चाहिए। जप सतत हो गया बाद आपकी सभी प्रक्रिया अलग प्रकार की हो जाने की। शरीर की, मानस की, बोलने की। लगे हमारे जैसा, बोल-चाल करता सब। आदमी लगे । १२-१४ घंटे (तक सतत जप) ले जाओ, तो फिर बदलाव हो। तब तक नहीं होता। क्योंकि प्रारंभ में तो मन है। मन का मूल धर्म संकल्प-विकल्प। मन संकल्प-विकल्प करेगा। कोई कहे कि भगवान का नाम मैं मन में लेता हूँ, तो वह गप है। वह गलत बात। किन्तु वह जप १२-१४ घंटे तक ले जाओ। तत् पश्चात् अजपाजप होने लगता है। सब प्रक्रिया। पंद्रह घंटे तक। उसके बाद भगवान की कृपा हो तो आप आगे जा सकते हो। पंद्रह घंटे तक मेहनत करके मैं जा सका हूँ। उसके बाद मैं जा सका नहीं आगे।

साँप काटा वह भगवान की कृपा

उसके बाद भगवान की कृपा बिना नहीं जा सका होता। तो मुझे साँप कटाया। और नामस्मरण ७६ घंटे / *'नोन-स्टोप'* हो गया। ७६ घंटे। मैंने कहा मुझे मरना नहीं है और वेदना तो ऐसी हो की साहब, उस वेदना का तो कोई पार नहीं। सिर तो जैसे कचरघान हो जाय, मानो पीसा जाता हो। मानो कि हजारों मन कूटाता हो ऐसा और पूरे शरीर में वेदना। एक ओर साँप का जहर बेहोश कर डाले ऐसा। और मैंने स्मरण चालू ही रखा।

तो मूल बात यह कि १५-१६ घंटे तक हम ले जायँ, Then after the grace the Lord will work, not till then. ये पंद्रह घंटे बाद तो भगवान की कृपा ही है। मैं तो ऐसा अवश्य मानता हूँ साहब। मेरे जैसे का तो कोई हिसाब नहीं था। मैं तो जप करने में मानता ही न था। मेरे जैसे से तो क्या हो भाई? किन्तु महात्मा गांधी ने कहा मुझे। पत्र लिखा। तब उन्होंने जवाब दिया था, 'भगवान का नाम ले, रोगमात्र मिट जाएगा। साधु ने अच्छा बताया है।' गांधीजी तो जप करते। माला अपने साथ रखते थे। गांधीजी भगवान का नामस्मरण करते। मणिबहन को कागज में लिखा था, मरते पहले गांधीजी ने यों कहा उस मणिबहन को 'भई, सब महात्मा मुझे कहते हैं। किन्तु मरते समय यदि मेरे से भगवान

का नाम लिया जाय तो जानना कि मैं सच्चा महात्मा। यदि न ले सका तो मैं बिलकुल झूठा।' ऐसा कहा है। 'तो मुझे दंभी मानना। अगर भगवान का नाम ले सका तो सच्चा महात्मा।' गांधीजी बोले हैं सही। हे राम, हे राम मरते समय।

मंत्रजप कैसा होना चाहिए ?

भगवान का स्मरण कोई भी हो। भगवान के हजार नाम हैं। कोई भी नाम हो। मैंने स्वयं खोज निकाला कि शब्द संक्षिप्त से संक्षिप्त होना चाहिए। उसमें ह्रस्व स्वर होने चाहिए। जुड़े हुए अक्षर नहीं होने चाहिए। चौथा कि हमारे शब्द के तीन स्थान-नाभि, कंठ और मूर्धन्य तीन। वह तीनों को स्पर्श करे ऐसा होना चाहिए। वह जप उत्तम। कोई विद्वान ने, कोई साधु ने यह कहा नहीं है या कोई शास्त्र की बात नहीं है। मैंने तो स्वयं अपनेआप खोजा है, क्योंकि 'हरि:ॐ' बोलता था। वह बोलते-बोलते उस पर से मुझे विचार आया। जब जप उत्तम से उत्तम कौनसा हो? कौनसा शब्द जप के लिए उत्तम? वह फिर *रेशनली*-मेरे गुरुमहाराज ने मुझे सिखाया है कि लस्टम-पस्टम सब करना नहीं। उसका *सायन्स* होना चाहिए। तो उस पर से मुझे विचार आया। इससे उस पर से मैंने देखा कि जप संक्षिप्त से संक्षिप्त होना चाहिए। तो 'हरि:ॐ' उसमें ह्रस्व स्वर हैं। जुड़े हुए अक्षर नहीं है। और तीनों स्थान को स्पर्श करे वैसा है।

जिज्ञासु : अनुभवी के अजपाजप के श्वास साथ में निमित्त जुड़ा होता हो ?

श्रीमोटा : उसे अनेक निमित्त हो। अनेक स्थान में वे हो। अमरिका में हो या तो मंगल पर हो। शुक्र में हो, शनि में हो या रवि में हो। अनेक प्रकार के जीवों के साथ उसे निमित्त हो। पाँच तत्त्ववाले शरीर के साथ ही अनुभवी को निमित्त है, ऐसा नहीं हंअ... । अनेक प्रकार के जीवों के साथ उसे संबंध है। पशु-पक्षियों साथ संबंध। किन्तु वह...वह जैसे श्वास से सूंघकर आदमियों जानता है, उस तरह श्वास से समझ आ जाती है। दूसरा कोई तरीका से समझ नहीं आती। किन्तु अंदर दिमाग की बुद्धि से उसे समझ होती है। किन्तु बुद्धि और श्वास साथ-साथ है। साथ-साथ ही हैं। अलग नहीं हैं। दोनों साथ काम करते हैं।

किन्तु अनुभवी को पहला साधन बुद्धि को समझने के लिए मिलता है वह श्वास। निमित्त को समझने। जब ***जीव****दशा* में हम श्वास से नहीं समझ सकते हैं। ***जीव****दशा* में श्वास तो हमारे हृदय में हमारे शरीर को जीने के लिए कारणमात्र है। दूसरा कारण नहीं है। श्वास तो जीने के लिए ही है। जब उसको (अनुभवी को) जीना तो है ही, मानो कि वह जीता है, वह फिर हमारे जैसे जीता है, वैसा है। वह तो चेतन ही है। वह तो जीना है तो जीये। और ना जीना है तो ना जीये। जाता रहना है तो जाता रहे। हमें जाना होता नहीं है। बलपूर्वक हम जाते हैं। वह बलपूर्वक नहीं जाता, उसका प्राण बलपूर्वक नहीं जाता। उस तरह अनुभवी पुरुष जो है, उसके श्वास जो हैं, वे हमारे जैसे नहीं हैं। वह मूलभूत समझ लेना है।

जिज्ञासु : वे बहुत मंद पड़ गये होते हैं ? ये संसारी जो होते हैं, वे बारह ..... श्वास लेते हैं ?

श्रीमोटा : ना, ना। मेरी बात सुनो। यदि आप एक बात समझ लो कि संसार के अंदर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, रागद्वेष, अहं है। ऐसा अनुभवी को नहीं है। मिनट, पलभर भी नहीं होता। निमित्त होने पर भी वह साक्षी है। निमित्त से वह लेपायमान नहीं होता। यह सब स्वीकार कर सकते हो न ? तब निमित्त उसे पलभर भी छोड़ता नहीं अनुभवी को। क्योंकि असंख्य हैं न निमित्त। पार बिना के। तब उसके अनुसार उसका श्वास चलेगा।

जिज्ञासु : निमित्त न हो तो ?

निमित्त न हो तो श्वास किस प्रकार के ?

जीवदशा का श्वास और अनुभवी का श्वास

श्रीमोटा : निमित्त न हो, उस समय श्वास दीर्घ भी सही। दीर्घ और बहुत मंद। एक-सा। उसमें फर्क नहीं। एक-सा वे कैसे कि उसकी तुलना नहीं कर सकते। किन्तु बहुत मंद। मंद यानी ऐसा लगे सही कि चलता है किन्तु दीर्घ। दीर्घ सही। बहुत दीर्घ चलते। हमें लगे ऐसा कि पता लगे की दीर्घ चलता है। किन्तु ऐसा काल समय बहुत कम हो। रात्रि के समय होता है। मध्यरात्रि में ऐसा समय उसे आता है सही। अनुभवी को मध्यरात्रि में। किन्तु किन्तु वह काल बहुत थोड़ा टिकता है। कितना ?

पाँच, दस, पंद्रह मिनट तो भाग्य से कह सकते हैं। बाकी ये निमित्त तो चलते ही रहते हैं। और अनंत हैं। निमित्त उसे। जैसे ज्ञान उसे अनंत है और अज्ञान भी अनंत है। उस तरह निमित्त उसे अनंत हैं।

जिज्ञासु : मोटा, यह बातचीत आज जानी। ख्याल भी नहीं ऐसा निमित्त का यह तो संसार हो गया।

अनुभवी का संसार

श्रीमोटा : भारी संसार। ये दूसरे सब संसारियों-संसारियों से अनुभवी का संसार तो बहुत बड़ा। बहुत बड़ा। इतना सब होने पर भी वह अलग। कोई निमित्त के साथ कोई निमित्त ऐसा आया। (निमित्त सत-असत दोनों हो न ? आप कहते हो सत का भी हो और असत का निमित्त न हो ऐसा कुछ नहीं) निरा वासना में हो फिर भी अलग। यह कौन माने ? यह जगत मानेगा नहीं भाई, जगत तो सतवाला हो, अच्छे प्रकार का हो तो उसे माने। और बूरे प्रकार का हो तो जगत माने नहीं।

जिज्ञासु : किन्तु वह बूरे प्रकार का निमित्त के कारण से हो ?

श्रीमोटा : निमित्त के कारण से। उसे वह साबित कर दे सके। साबित किस प्रकार करें भाई ? उसे तो हजारों मील दूर हो, वह तो दिखा सकते नहीं। उससे। किन्तु खुद कहे, देख इस प्रकार का है। कोई आदमी मानो कि अत्यंत कामवासना से पीड़ित हो। उसकी नाड़ी अत्यंत वेगवान हो जाय। श्वास में फर्क पड़ जाय। दिखा सके। मेरी नाड़ी देख। मेरा श्वास देख। ये दो तो प्रत्यक्ष लक्षण उसके। आँख बोल दे। विचार हुआ हो तो आँख बोल दे। तब उसकी इन्द्रियाँ सब स्पष्ट। एकदम स्पष्ट। इतना सब स्पष्ट कि आप जाँच कर लो ऐसा स्पष्ट। इससे इसमें मान लेने की बात नहीं है। हकीकत में reality में ऐसा होता है उसका। स्वस्थता पक्की इन्द्रियाँ उसकी सब स्पष्ट। तब निमित्त किसी भी प्रकार का हो और कुछ भी वह जो किया करता हो, किन्तु उसकी इन्द्रियाँ सब स्वस्थ तब। बिलकुल।

भगवान का अवतार, मुक्तात्मा का अवतार, जीवन्मुक्त का अवतार।

जिज्ञासु : भगवान अवतार लेते हैं उसमें, या कोई मुक्तात्मा अवतार धारण करता है उसमें और इस जन्म में साधना करके जिसने ज्ञान

प्राप्त किया है, ऐसे अनुभवी के सामर्थ्य, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति आदि में कम-बेशपन या कोई वैशिष्टता होती है सही? उदाहरणार्थ, नृसिंहावतार, रामावतार या कृष्णावतार और इस जन्म में साधना करके अनुभवी हुआ और कोई पूर्व में मुक्त हुआ ज्ञानी जो लोकानुग्रह के लिए जन्म लेता है, उसमें कोई अलग-अलग विशिष्टता हो सही?

हरएक अवतार का अलग-अलग मिशन

श्रीमोटा : विशिष्टता बिलकुल नहीं होती। प्रत्येक को अपना-अपना मिशन हुआ न? भगवान राम, कृष्ण अवतरित हुए। अब राम अवतरित हुए तो कि उसे अमुक प्रकार का मिशन। वह तो पता लगे। उस प्रकार कोई अनुभवी। कोई अनुभवी हुआ हो किसी कारण के लिए उतरा। इससे उसका मिशन लेकर उतरा वह भी। सब यह साधना करते-करते कोई अनुभवी हुआ। अनुभवी होने के बाद भी उसे मिशन है। निमित्त का कारण है। अनेक प्रकार के काम करने का। इससे जो-जो प्रकार का मिशन हो उस-उस प्रकार की शक्ति व्यक्त करता है वह। पाँच होर्सपावर खर्च करना हो तो पाँच होर्सपावर खर्च करे और पचास होर्सपावर खर्च करना हो तो पचास होर्सपावर खर्च करे। मिशन हो उस प्रकार से वह काम करे।

जिज्ञासु : उस प्रत्येक की शक्ति में किसी प्रकार का फर्क सही?

श्रीमोटा : शक्ति में बिलकुल फर्क नहीं। तनिक सा नहीं। (अगर शक्ति में फर्क गिनें तो) तो चेतन में फर्क हुआ गिन सकते हैं।

जिज्ञासु : हाँ। बराबर।

श्रीमोटा : अगर आप शक्ति में फर्क है ऐसा गिनने जाओ तो चेतन में फर्क हुआ गिन सकते। किन्तु अवतार हो या किसी भी प्रकार का अनुभवी हो, चेतना में फर्क नहीं। शक्ति में बिलकुल फर्क नहीं। मिशन जैसा हो, उसके अनुसार शक्ति खर्च होती है। यह गलत हो तो कहना साहब।

जिज्ञासु : श्वेताश्वेतर उपनिषद में ऐसा योगाग्निमय शरीरवाला योगी का वर्णन है कि जिसे रोग नहीं होता। जो वृद्ध नहीं होता। जिसका मृत्यु नहीं होता। ऐसा मंत्र है।

श्रीमोटा : यह श्रीअर्जुन कहता है वही है।

जिज्ञासु : और इसमें है। यह मंत्र ही है। इसका ऐसा वर्णन है।

श्रीमोटा : बिलकुल सच है।

जिज्ञासु : तो ऐसी संभावना होनी चाहिए?

श्रीमोटा : संभावना नहीं। Reality है साहब।

जिज्ञासु : ऐसा कोई व्यक्ति हुआ होगा या होना चाहिए? ऐसा अनुमान होता है। आपका क्या मत है?

श्रीमोटा : मेरा मत ऐसा है...

जिज्ञासु : कि यह अलंकारिक है?

निमित्त

श्रीमोटा : यह अलंकार की बात नहीं है। यह हकीकत की बात है। श्रीरामकृष्ण परमहंस अवतारी हो गये। उसे केन्सर कहाँ से? तो निमित्त की बात आती है न? निमित्त के साथ एकरस हो जाय। मेरी बात कह सकता ही नहीं। मुझ से बोला ही न जाय।

नंदुभाई यह बात जानते हैं। अभी पत्र लिखे हुए पड़े हैं। एक महिला को प्रसव होता था और कष्ट होता था और मैं भी कष्ट से पीड़ित था। उस महिला ने तो पहले लिखा न था। कागज आया तब पता लगा। यह बात पहले मैं कहता था। अब मैं कहता नहीं। किन्तु उसका निमित्त तो हो न? अनुभवी को तो निमित्त अनुसार तब उस-उस प्रकार का हो।

जिज्ञासु : इससे यह निमित्त की बात आती है, वह *कंडीशन* मिल जाती है।

हठीले निमित्त।

श्रीमोटा : इसका एक दूसरा कारण कहूँ। अमुक निमित्त ऐसे हठीलें हो, उस अनुभवी को कि उसमें (निमित्त में-हठीले जीव में) भगवान का भाव उसे अभिमुखता जागे। इसलिए उसे अधिक समय रखे। दया करके, कृपा करके। इससे उसका अधिक भोगता। वह हठीला जीव है वह हिलता नहीं। हिलता नहीं। किन्तु अनुभवी छोड़े ऐसा नहीं है। ऐसा यह आदमी उसे अधिक समय रखकर, उसका दुःख अधिक भोगकर उसमें अभिमुखता जगाता है। वह तो परम पुण्य का काम करता होता है।

किन्तु यह भी किसी को पता नहीं लगता। कोई समझ नहीं सकता अनुभवी की यह बात। वह भोगता है। जो दु:ख भोगता है शरीर से। किन्तु वह तो उसके (निमित्त के-हठीला जीव के) लिए कि उसमें अभिमुखता जागे।

किन्तु वह भोगते-भोगते उसकी प्रार्थना, उसकी मनोवांछना या मन का भाव उस निमित्त संबंधी होता है कि भगवान के संबंध की अभिमुखता उसकी जाग सके। **उसका (अनुभवी का) अस्तित्व मात्र इसलिए है कि भगवान की अभिमुखता सभी में जागे। निमित्तों में।** वह निमित्तों को खाली-खाली नहीं भोगता। इसलिए भोगना.....भोगते-भोगते उस-उस निमित्तों में भगवान की अभिमुखता जाग्रत हो। वह उसका (अनुभवी का) महान कर्तव्य है। मिशन है यह। अनुभवी का। *जीव*दशा में से मथते-मथते अनुभव हुआ तो फिर उसका यही मिशन है कि निमित्तों में भगवान की अभिमुखता जागे, वह मिशन।

निमित्त का तत्त्वज्ञान बिलकुल नया।

जिज्ञासु : यह निमित्तों का तत्त्वज्ञान वह मूल शास्त्रों में इतना स्पष्टरूप से नहीं दिया है। इससे वह एक वहुत नयी बात जानने मिल रही है।

श्रीमोटा : मात्र नई बात नहीं। समझ में आये ऐसी है।

जिज्ञासु : बहुत अच्छा है। समझने के लिए बहुत ही जरूरी।

श्रीमोटा : बहुत सरल लगी। इसीके अनुसार ही है। किन्तु 'निमित्त' में मैंने बहुत लिखा नहीं है। बहुत गहरा लिख सके ऐसा। निमित्त में बहुत गहरा जा सके ऐसा है। किन्तु मेरे मन में ऐसा कि ये लोग समजेंगे नहीं और हमारे लिए विद्वत्ता के लिए लिखना योग्य नहीं। किसी ने नहीं और आपने दिया वह लिख डाला। डेढ़ दिन में और आपने सभी को पढ़वाया। इससे कैसा है ?

जिज्ञासु : किसी व्यक्ति को अनुभवी की मदद का ठोस परचा मिलता होता है, उस प्रसंग की जान हमेशा अनुभवी को होती है सही ? या उसकी सर्वत्र प्रसरित और उस-उस व्यक्ति के साथ जुड़ी हुई चेतना अनुभवी के मन को जान किये बिना अपने आप ही कई बार प्रवर्तमान होती है ?

श्रीमोटा : कई बार अपने आप प्रवर्तमान हो। कई बार जान होती रहती है।

अ अनुभवी है और **ब** को कुछ अनुभव हुआ तो **अ** को जान होती हैं, किन्तु कब होती है कि जब उस **ब** में जो अभिमुखता जगानी है, उस अभिमुखता प्रति (भगवान की भावना के प्रति) अधिक से अधिक झुकाव हुआ किया हो तो ऐसी स्थिति में उस अनुभवी को पता लगता है।

अनुभवी को सामान्य *जीव*दशावाले संसारी **जीवों** के साथ भी निमित्त होता है और उनकी साथ का उनका प्रसंग बना हो तो चला जाता है।

अनुभवी की कृपा-मदद का संसारी को ख्याल होता।

श्रीमोटा : ऐसी स्थिति हो वहाँ ख्याल चौकस है। स्पष्टरूप से होता है। यह जैसे सूर्य उदय हुआ है। जैसे यह पता लगे वैसा। *जीव*दशा में आगे बढ़ा हुआ, भगवान के मार्ग प्रति आगे बढ़ा हुआ **जीव** होता है। ऐसा प्रयत्नशील **जीव**, struggling soul जो आगे बढ़ता रहता है। उसका ऐसे प्रकार का उसको (अनुभवी को) ठीक पक्की समझ आती है। इसलिए कि उसे (प्रयत्नशील **जीव** को) वह (अनुभवी) मदद कर सके। फिर सामान्य जीवों का तो उसे आकर चला जाता है।

संसारी बाबत में मदद स्वयं हो

जिज्ञासु : और सांसारिक विषय में जो मदद करता है, उसकी जान होती है ?

श्रीमोटा : संसारी विषय में मदद होती है। उदाहरण रूप से किसी को लक्ष्मी मिले, किसी को कुछ मिले, ऐसी जो मदद होती है, वे कुछ पल के संबंधो ***जीव***दशा के। उदाहरण स्वरूप **अ** अनुभवी है, **ब, क, ड,** संसारी **जीव** हैं। **ब, क, ड** को अलग-अलग लाभ हुए। संसार के, सांसारिक प्रकार के। तो अब जो **अ** है, उस **अ** को उस-उस जीवों के साथ का उस-उस प्रकार का ऐसा कर्म, पुराने पूर्व जन्मों का उस-उस प्रकार का कर्म, कर्म का संबंध उस-उस प्रकार का और उस-उस प्रकार का हुआ किया उसमें उसे कुछ लेन-देन भी नहीं है। उसे कुछ ख्याल में भी नहीं आता। चला जाता है।

जिज्ञासु : किन्तु अपनेआप ही हुआ करे ?

श्रीमोटा : अपनेआप ही हुआ करे। हुआ ही जाएगा, हुआ करे नहीं। हुआ ही जाएगा। ऐसा ही होगा। क्योंकि जो कुछ सब पूर्व जन्म

पहले अनेक जन्म हैं। अनेक जन्मों का ऋण कितने समय में खत्म हो जाता है। सब हुआ ही जाएगा उससे। अनेक जीवों के साथ उसके जो ऋणानुबंधन है। कर्म का, कर्म के प्रकार का। फिर किसी किसी को लाभ, किसी को गेरलाभ भी हो। गेरलाभ न हो ऐसा नहीं फिर। किसी को मार भी पड़े। Positive और Negative दोनों आते अंदर। इससे जिसे-जिसे ऐसा हो। लक्ष्मी मिले। कुछ मिले। कुछ लाभ हो। कुछ न कुछ हुआ करे। परिवर्तन — वे इस पूर्वजन्म के कर्म — संबंध के कारण। किन्तु अनुभवी है, उसके समागम से लाभ और लाभ ही है। कल्याण ही है। उसमें फर्क नहीं।

आप यदि कुछ फोगट बिना समझ आते हो तो भी आपका कल्याण है। क्योंकि उसके आंदोलन हैं। उसमें से निकलते शरीर में से। हमें अणु में से आंदोलन निकले रोम रोम में से। आज इस शास्त्र को कोई मानेगा नहीं तो विज्ञानियों या कोई माने ना माने। किन्तु हमारे अणु-अणु में से किरणें निकलती हैं। मैंने स्वयं देखा है। यह प्रयोग भी किया है। निकलते और प्रवेश करते। निकलते और प्रवेश करते। एक पलभर में असंख्य दफा हो जाय। तब वे सब जो किरणें हैं, जो (अनुभवी में से) निकलती हैं, वे हमें स्पर्श करती हैं। वे स्पर्श करती हैं, यह हमें पता नहीं लगता। किन्तु आपमें चेतन तो है ही। उसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते। भले *जीव*दशा का है। वह चेतन है, वह *जीव*दशा का है, वह कबूल, किन्तु चेतन है सही। इससे वह चेतन आंदोलन ग्रहण कर लेता है। किन्तु वह ग्रहण कर लेता है और ग्रहण करके उसका परिवर्तन होता है *जीव*दशा में। आंदोलन तो ग्रहण हो जाते हैं। वह उनकी ताकत बाहर की बात नहीं कि ना नहीं लें। यह तो अपनेआप श्वासोच्छ्वास लेता है, वैसे और सूर्य की किरणें मिलती हैं, उस तरह उसके आंदोलन प्रवेश कर लेते हैं। अंदर। किन्तु *जीव*दशा में बदल जाते हैं। वह हमें समझ होती हैं। क्योंकि प्रकार वह है। अगर प्रयत्नशील soul हो, struggling soul हो, वह उस विषय में आगे जाता हो तो उसमें उसे ज्यादा आगे करता है। इसमें *जीव*दशा में बहुत परिवर्तन हो जाता है। किन्तु *जीव*दशा में भी ये आंदोलन मिलने से और अधिक समय ऐसी सोबत रहने से उन आंदोलनों से उसकी प्रकृति बदलती है। सद्वृत्ति, सद्भावना जागती है। भले भगवान का नाम लेता न हो। भगवान का भक्त हुआ न हो।

जिज्ञासु : यानी उसका रूपांतर होने लगता है।

श्रीमोटा : रूपांतर धीरे-धीरे होता है। उसे पता नहीं लगता किन्तु सद्‌भाव उसमें जागता है। सद्‌भावना जाग्रत होती है। अनुभवी के मिलन जैसा दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। सच बात कहूँ। सच कहता हूँ साहब, आप पधारते हो, तब बहुत उत्तम प्रकार का सत्संग होता है। क्या आपको कहता था साहब ?

जिज्ञासु : जीवदशा में परिवर्तित हो जातें हैं वे आंदोलन।

श्रीमोटा : यह उस चेतन के अनुभवी पुरुष है। उसके आंदोलन हैं, वे संसारी जीवों को स्पर्श कर जाते हैं। किन्तु उसका वह है वह *जीव*दशावाला होने से *जीव*दशा के हो जाते हैं। किन्तु बहुत जरूरी है यह। स्वयं की महत्ता बढ़ाने कहता हो ऐसा अर्थ निकले इससे मैं बहुत बढ़ाकर नहीं कहता। मेरे से बहुत कहा जा सके ऐसा है इस पर। किन्तु उलटा अर्थ ले इससे। और व्यक्तिगत मेरे से कहा जाय ऐसा नहीं हैं। इसलिए मैं अधिक नहीं कहूँगा। किन्तु सामान्य कहूँगा। Rationally बुद्धि हमारी समझ सके उस तरह।

अनुभवी है और संसारी जीवों के अंदर उसका स्पर्श होता है। इससे उसके आंदोलन वहाँ जाते हैं। किन्तु वे *जीव*दशावाले हो जाते हैं। जैसे वर्षा है। वह रण में होती है। कुछ पैदा नहीं कर सकती। कोई अच्छी जमीन में वर्षा होती है तो वहाँ फसल पैदा हो सकती है। जिस-जिस प्रकार की जमीन उस-उस प्रकार की फसल वहाँ पैदा कर सकते हैं। वर्षा एक की एक ही। किन्तु भूमिका उसकी जो होती है वैसी फसल हो सकती हैं। उस तरह उस *जीव*दशावाले में उसके आंदोलन जाते हैं, वे *जीव*दशा में हो जाते हैं। किन्तु दूध का दही होता है कि नहीं ?.....उस तरह उसमें उसमें..... होता हैं। वह जानता होता नहीं हैं। किन्तु वह प्रक्रिया चलती हैं अंदर। साधना-बाधना कुछ न करता हो। केवल सोबत ही करता हो, संसारी लोगों की सोबत हो उस तरह। फिर भी प्रक्रिया चालू हो। लोंगो को ऐसा कि यह भाई एक अच्छा काम करनेवाला है। इतना ही।

उदाहरण के लिए मेरा नाम लो न। कोई हर्ज नहीं, ये **मोटा** ने एक करोड़ के काम किये। इस समाज में ऐसा आदमी है। परिचित। दूसरी कुछ महिमा नहीं है। अन्य कोई प्रतिष्ठा नहीं हैं। इतना ही कि इस आदमी ने समाज के अच्छे काम किये। उसे कुछ नहीं चाहिए। कुछ राग नहीं है। सामान्यरूप से जीता है। अब उसकी सोबत करो। यदि सोबत ही करते

हो तो भी उसके आंदोलन जाते हैं, उनमें। किन्तु ये ***जीव***दशावाले होने से ***जीव***दशावाले हो जाते हैं आंदोलन। किन्तु.....हैं वह। उस अनुभवी के। चेतनवाले आंदोलन वह.....है। उनमें (***जीव***दशावाले में) वह..... है। वह कब दही होगा वह निश्चित कह सके ऐसा नहीं। अगर वे सामान्य प्रयत्नशील हो न। वह यदि प्रयत्नशील हो तो शीघ्र आये। किन्तु सामान्यरूप से अपना संसार-व्यवहार चलाते हो तो भी अमुक अवधि के बाद उसे सद्भाव प्रकट हुए बिना नहीं रहता। उस (चेतनपुरुष) प्रति तो प्रकट हो ही। सामान्यत: रोज आते करते हो, सोबत के कारण। बाद में भाईचारा हो जाय। मिला करें और ऐसा करें। उसमें से एकदूसरे के प्रति सद्भाव जाग्रत हो। इससे उस अनुभवी प्रति भी सद्भाव हो जाय। और उसके स्वयं में भी सद्भाव प्रकट होता है। अन्य के लिए भी सद्भाव प्रकट होता है। और कामक्रोधादि भी थोड़े समय के लिए कम होते हैं। केवल उसकी सोबत से—केवल उसके समागम में रहने से कोई कुछ साधन नहीं करते हो आप तो भी कामक्रोधादिक उसके कम होते हैं संसारी **जीव** के। इससे ऐसा जमन है उसका। उसके आंदोलनों का। अनुभवी के आंदोलनों का। सामान्य संसारी **जीव** में जो प्रवेश करता है, वह इस प्रकार का है। दूध का दही बना देता है।

जो बात आपके लिए कहनी थी वह कही।

जिज्ञासु : किन्तु मेरा ऐसा पूछना था, उस बारे में कि कोई अत्यंत तमस प्रकार का **जीव** है। तमस उसमें प्रधान है। तो भी उससे होगा ?

श्रीमोटा : होगा ही। किन्तु लम्बी अवधि के बाद।

जिज्ञासु : हाँ जी। समझा।

श्रीमोटा : आदमी को ७० वर्ष हुए हो और ५५ वर्ष तक उसने सत्संग सोबत की हो, केवल सोबत। तो शत प्रति शत हो। इस जन्म में नहीं, किन्तु जन्मजन्मांतर में वह साधना करे तो जबरदस्त वे हो जाएँगे।

जिज्ञासु : और उसमें शक्ति न हो तो प्रकट हो ?

श्रीमोटा : शक्ति है ही उसमें। शक्ति तो है ही। वह जानता नहीं है। शक्ति है ही उसमें। और उसका आया है। वह.....

डालें और एकदम कुछ दही हो जाय ? समय लगता है न ? २४ घंटे लगते हैं।

ऐसी ***जीव***दशा में डालना है। डालने का नहीं है। डाला ही जाता है। गये इससे डाला ही गया। इस जन्म में यदि सचमुच struggle करे, प्रयत्न करे, प्रयत्न करे, sincerely, honestly और devotionally तो उसका परिणाम आये। प्रयत्न न करे तब भी उसका परिणाम है ही। वह जो मैंने कहा। ७० वर्ष में ५५ वर्ष सत्संग करे, सोबत करे तो दूसरे जन्म में तो इतना सब volcanic aspiration उसे जागती है कि बहुत आगे बढ़ता है।

मेरे गुरुमहाराज तो वहाँ तक कहते थे। (अपने को पता नहीं कि) तीन जन्म में तो वह अनुभवी हो जाय। केवल अनुभवी की सोबत से। वह कुछ साधना-बाधना न करे तो भी। किन्तु वह सोबत सद्‌भावयुक्त होनी चाहिए। शंका-कुशंकायुक्त सोबत करो तो नहीं चले उसमें। तो वह लाभ नहीं मिलेगा आपको। सोबत आपकी सद्‌भावनायुक्त होनी चाहिए। साथ में शंका-कुशंकायुक्त सोबत से जामन तो पड़ेगा। किन्तु जामन बिगड़ जाएगा। सब लोंदे-लोंदे नहीं हो जाते ?

जिज्ञासु : पानी हो जाता है।

श्रीमोटा : कई दफा।

जिज्ञासु : हाँ। पानी हो जाता है। दही होता ही नहीं।

श्रीमोटा : उसका ऐसा हो जाता है तब। अगर शंका-कुशंकायुक्त हो तो।

जिज्ञासु : किन्तु उस अनुभवी की कृपा से या.....से शंका-कुशंका टल जाय उसकी ?

स्वार्थ लगना चाहिए

श्रीमोटा : ना... ना... नहीं टल जाय। यह टालना हो तो वह स्वयं ही कर सकता है। वह तो उसका स्वार्थ लगा हो तब। कोई दुष्ट से दुष्ट आदमी हो, उसके साथ हमें स्वार्थ लगा हो तो उसके अवगुण देखते हैं हम ? हमारा काम निकाल लेना का करते हैं की नहीं ? इतने अनुपात में भी उस अनुभवी के साथ आप सोबत रखो। ऐसे प्रकार की। क्योंकि उसका प्रमाण तो है नहीं हमारे पास कि यह अनुभवी है ? यह तो हम जानते नहीं। कहेता-कहेती सुना-सुनी कहते हैं हम। किन्तु उसके साथ ऐसी सद्‌भावयुक्त सोबत रखो। सोबत रखो। सद्‌भावयुक्त।

हररोज कैसे मिलें ? शरीर से तो रोज मिल नहीं सकते और सोबत तो हमें रखनी है और प्रतिदिन रखनी है। तो फिर रोज उसके स्वरूप को याद करो, भजन करो। उसके स्वरूप को सामने रखकर आप एक समय निश्चित करो। मेरे गुरुमहाराज को मैं साकाररूप से उसके शरीर को धारण करता। शरीर चला जाता है। उसका काम पूर्ण हो जाय बाद में शरीर चला जाता है। बाद में शरीररूप नहीं रहता। आप में काम पूर्ण हो गया इससे समाप्त। तब तक शरीररूप से सत्संग किया करो। जितना अधिक समय रख सको उतना अधिक समय रखो।

मैं तो जो कुछ काम करते-करते मेरी आँख के सामने उसे ही धारण करता। उसे ही रखा करता। मुझे गरज ऐसी थी न। ऐसा स्वार्थ मुझे लग गया था। उसके प्रति का। कोई कहेगा कि वह तो गुरुमहाराज की कृपा से हुआ आपको। किन्तु ऐसा नहीं है। Independently में कहता हूँ कि मुझे ऐसा स्वार्थ लगा था। क्योंकि मुझे लगा कि यह नामस्मरण से मेरा वह मिटा। इससे मुझे विश्वास हुआ था कि इसमें शक्ति है। कोई जबरदस्त। उसमें से बाद में भगवान का स्मरण लेने की गरज लगी।

अध्यात्म के संस्कार किस तरह पनपे ?

जिज्ञासु : उस व्यक्ति जिनके संस्कार पड़े। निर्दोष भूमिका में थोड़े पनपे और बाद में फिर संसारी **जीव** जैसा हो गया। फिर दूसरा जन्म धारण किया। तब वे संस्कार दुगुने जोर से कार्य करते हैं। तो उस समय में दूसरे जन्म में भी उस अनुभवी के साथ फिर संबंध स्थापित होता है सही ?

श्रीमोटा : नहीं। अनुभवी के साथ कुछ निसबत नहीं। अनुभवी के साथ कोई संबंध उसे उस जन्म के बाद नहीं है। उदाहरणार्थ यह फलाना अनुभवी से यह हुआ ऐसा नहीं रहता। उसे एक यह स्वयंस्फुरित वे जो संस्कार अनुभवी के पड़े हैं। पहले के जन्म के उसके स्वयं स्फुरित ज्ञान से उस-उस समय बरतते रहता है। **जीव**दशावाला होते हुए भी। जैसे **जीव**दशावाला होने से। आकाश में विमान नहीं जाते ? आकाश में ? उस तरह यह **जीव**दशावाला होने पर भी बचपन में उसकी निर्दोष भूमिका होने से ये संस्कार उस समय काम करते होते हैं। उस समय उसकी सभानता होती है सही। किन्तु सभानता उसकी अभी ऐसी परिपक्व दशा की नहीं होती कि यह कर्म मैं करता हूँ सही उसकी प्रेरणा कहाँ है ? किससे हुई है ? क्यों हुई है ? उसका कारण क्या ? ये सब में मैं गहरा नहीं उतरता।

वह जो बालक हुआ दूसरे जन्म में। तीसरे जन्म में ऐसा होता नहीं। दस-बारह जन्म में होने लगता है। किन्तु अनंत जन्मों में दस-बारह जन्म का क्या हिसाब ? **ऐसे आदमियों - अनुभवी आदमियों के कर्म जो हुआ करते हैं, उस कर्म के साथ जो-जो व्यक्ति जुड़ते हैं, वे भले अभिरुचिवाले हो ही नहीं। भगवान के लिए बिलकुल अभिरुचिवाले न हो तो भी उसका स्फुलिंग उसमें आया। उसका (अनुभवी का) संस्कार उसमें (संसारी में) गया। वे तो सर्व किसी के जाते हैं। उसमें कोई चमत्कार जैसा नहीं है। उस अनुभवी के संस्कार उसका जो कर्म हुआ करता हो, वह कर्म फलित होने के लिए जो-जो व्यक्ति मिली उन सभी व्यक्तियों में (अनुभवी के) संस्कार जाते हैं। व्यक्ति की भूमिका तो बिलकुल नही है। वह तो एकदम व्यावहारिक भूमिका पर है और कोई तो विरोध में भी हो। फिर भी उसके संस्कार जाते ही हैं।**

संत के विरोधी में संस्कार जोरदार पड़ते हैं। वह एक आश्चर्य।

कई दफा ऐसा बनता है। किन्तु यह मैं बुद्धि में बैठा सकता नहीं। किन्तु कई जो विरोधी व्यक्ति हैं और उनमें संस्कार स्फुरित हुए, वे दूसरे जन्म में उनमें अधिक अच्छी तरह से खीलते हैं और अधिक अच्छी तरह से काम करता इस विषय में हो जाता है। विरोधी व्यक्तियों को कई बार अधिक फायदा होता है, इस मार्ग में। यह उस अनुभवी को अनुभवी जो काम करता है, वह कर्म करते-करते जो-जो व्यक्ति मिली और उसमें उन व्यक्तियों में कोई जोरदार विरोधी हो तो उस विरोधी में जो संस्कार पड़े वही संस्कार दूसरे जो XYZ दूसरे जो किसी को पड़े हैं, उसकी अपेक्षा विरोधी व्यक्तियों में पड़े संस्कार अधिक अच्छी तरह से काम करते होते हैं। ऐसा मेरा अनुभव है। और उसका explanation दे नहीं सकता। कि क्यों ऐसे ? यह विरोधियों को क्यों ऐसा होता है ? विरोध उसका इसके प्रति क्यों मिट गया ? और इसमें यह गया। वह मुझे अभी बैठा नहीं है। मेरे दिमाग में बैठा नहीं है। किन्तु वह हकीकत मैंने जानी है।

*जीव*दशा का आधार क्या ?

जिज्ञासु : वह जो ***जीव***दशा का है, उसका जो आधार आप कहते हो, वह आधार यानी चित्त।

श्रीमोटा : चित्त उसे आधार नहीं कह सकते। आधार तो पूरी उसकी समग्र प्रकृति आधार।

जिज्ञासु : तो उस रूपांतर होने में उसे आधार भी ?

श्रीमोटा : उसकी प्रकृति है। ***जीव***दशा में तो प्रकृति आधार। किन्तु प्रकृति अलग-अलग प्रकार की। किसी की हलके प्रकार की। किसी की फीके प्रकार की। किसी की density वाली। किसी की जड़। किसी की सात्त्विक प्रकार की। किसी की रजस प्रकार की। किसी की तमस प्रकार की। ऐसे अनेक प्रकार उसके हो सकते हैं। प्रकृति के। सात्त्विक प्रकार की हो तो जल्दी उठाव हो उसका। सात्त्विक प्रकार की हो, किसी जीव की तो उससे उठाव हो। एकदम उठाव। तो भक्ति जाग जाय उसकी। बिलंब नहीं लगेगा उसे।

जिज्ञासु : अब दूसरा प्रश्न यह है कि आधि-व्याधि और उपाधि एवं अच्छे या बुरे संकल्प, इच्छाएँ, सत्कर्म और असत कर्म वे सभी एक या दूसरे प्रकार से प्रकृति के स्वरूप हैं। अनुभवी प्रकृति का स्वामी है। तो अपना व्याधि एवं दूसरे के आधि-व्याधि और उपाधि का निवारण कर ही सके ऐसा तर्क की दृष्टि से सुसंगत लगता है।

श्रीमोटा : ठीक है।

जिज्ञासु : ऐसे सोचते ऐसा लगता है कि अनुभवी लोककल्याण के कार्यों में जो हिस्सा दे सके ऐसा हिस्सा दूसरी कोई व्यक्ति नहीं दे सकती।

श्रीमोटा : वह बात चौकस।

अनुभवी को निमित्त तो रहेगा ही।

जिज्ञासु : और जगत में अनुभवियों तो है ही। फिर भी हजारों वर्ष हो गये, असंख्य लोग दु:ख और अज्ञान में क्यों सड़ते हैं ? और कोई भी अनुभवी पंचभूतात्मक शरीर पर ऐसा काबू क्यों नहीं ला सका कि जिससे उसे रोग आदि न हो। और उसके शरीर का जब तक स्वयं न चाहे तब तक मृत्यु हो ही नहीं।

श्रीमोटा : यह है वह एक ऐसे प्रकार का प्रश्न है। यह कि यह process में ही है। आप कहते हो, उस प्रकार के process (प्रक्रिया) में चेतन है। चेतन जो अवतरण करता है। चेतन आधार लेता है न शरीर

का ? शरीर ऐसे प्रकार के होने चाहिए कि वह process में ही है। ऐसे प्रकार के शरीर जब होंगे तब ऐसे प्रकार का शरीर होगा। किन्तु तब भी उसे निमित्त नहीं हो ऐसा नहीं।

निमित्त होने पर भी अनुभवी नीरोगी रह सकेगा। अभी अनुभवी आदमी है। नीरोगी है। उसे रोग नहीं है। दिखते हैं रोग वे निमित्त के हैं। लोगों को लगता है रोग। उसके रोग लगते हैं। किन्तु रोग उसके नहीं हैं। उसका शरीर संपूर्ण नीरोगी है। किन्तु उसे निमित्त का है, जो भी सब। देखो बुद्धि से समझे तो वह मान सके ऐसी बात है। कोई कहेगा कि भाई ये आपके गप हैं। किन्तु वह है मान सके ऐसा। मानना पड़े ऐसा। किन्तु एक काल ऐसा आएगा कि निमित्त का लेने पर भी शरीर बिलकुल नीरोगी रहे। एक काल ऐसा आएगा, शरीर उस process में ही है। यह शरीर ऐसे development (विकास) होने के process में ही है वर्तमान में।

जिज्ञासु : वह जगत के उत्कर्ष में भी बहुत बड़ा भाग गिना जाएगा न ?

श्रीमोटा : उसका अस्तित्व मात्र जगत का उत्कर्ष है। उस समय उसे ऐसा (ख्याल) नहीं है कि मैं जगत का उत्कर्ष करता हूँ। वह तो भगवान करेगा। तु करनेवाला कौन है ? वह तो भगवान का कर्तव्य है। उस भगवान का कर्तव्य अनुभवी को मिल जाता है। वह कहता होता नहीं है। किन्तु उसका जगत पर का अस्तित्व वही जगत के उद्धार का कारण है।

जिज्ञासु : अब अनुभवी वह सर्वव्यापक होता है।

श्रीमोटा : हाँ।

जिज्ञासु : सभी के साथ identify हो जाता है।

श्रीमोटा : हाँ। Identify हो जाता है।

जिज्ञासु : तो उसके उत्कर्ष के साथ दूसरे का identification जो हुआ है, उसका भी स्वाभाविक उत्कर्ष होना चाहिए न ?

श्रीमोटा : नहीं होता।

जिज्ञासु : वह तो तर्कसंगत नहीं गिनायगा ?

श्रीमोटा : नहीं। तर्कसंगत नहीं है।

जिज्ञासु : क्यों नहीं है ?

श्रीमोटा : क्योंकि उसके साथ identify हुआ। किन्तु वह उस प्रकार से receive नहीं करता है। Identify हुआ इससे अनेक प्रकार के निमित्त है न उसे। किन्तु उसके साथ वह तो तादात्म्य हो जाता है। मैंने अभी कहा न कि अनेक संसारी जीवों के साथ वह मिश्रित होता है। करता है उसके विषय में। उसके आंदोलन जाते हैं। उसमें भी वह ***जीव***दशा का हो जाता है फिर। इससे वे सभी ***जीव***दशा के हो जाते हैं। अगर अनेक अनुभवी हो और सब उसके संसर्ग में जो आये इससे वे सब महत्मा हो जाय ? वह तो आपकी बुद्धि का दिवाला है, ऐसा आप अगर मानते हो तो।

अनुभवी के संसर्ग में आनेवाले सब महात्मा क्यों नहीं हो जाते ?

वे तो सब ***जीव***दशा के। वे सब संस्कार उसमें गए। उसके आंदोलन गए। वे ***जीव***दशा में ही हो गए। उसके। किन्तु लम्बी अवधि—लम्बी अवधि—होते-होते उसमें सद्भाव जागेगा। उसके आंदोलन ऐसा काम कर सके कि सभी। सभी भगवान के... एकदम भगवान को भजने लग जाये ऐसा नहीं होएगा। यह तो आज अनुभवी है सही सब। इससे जगत में—जगत में क्यों सब ऐसा ही रहा है। वह प्रकृति है जगत की। प्रकृति के गुणधर्म कुछ नष्ट नहीं होंगे। वे तो अनंत काल तक रहेंगे। और जब होंगे। यह शरीर ऐसा नीरोगीपन कि आकर चला जाय। निमित्त के रोग ले सही। सब सही। किन्तु शरीर उसे फेंक देगा। अनुभवी लोग शरीर के रोग रखते हैं। उसका कारण उसमें—वे हठीले जो जीव हैं, उनमें रहा है। अनुभवी को उसके साथ निमित्त उसके साथ का *मिशन* है। कि अमुक अमुक *जीव* को तो अभिमुखता जगानी ही चाहिए। जगानी ही चाहिए उसमें। उसका निमित्त है। वह निमित्त उसे इस तरह करता है कि अधिक समय रहे। उसकी consciousness (सभानता) उस समय में वह रहती है। अमुक—अमुक प्रकार के रोग हो। अमुक के हैं। वह उसे consciousness में वह होता है। उस समय में। वह भोगने के समय में इससे उसके आंदोलन उसमें जाते ही रहते हैं। अधिक से अधिक समय। बहुत समय तक। इससे उसमें से भगवान की कृपा से अभिमुखता भगवान के प्रति जागती है। इसलिए वे रोग भी लम्बे समय रखते हैं।

श्रीअरविंद का supramental

जिज्ञासु : आपने जो कहा process चल रहा है।

श्रीमोटा : हाँ, process चल रहा है।

जिज्ञासु : श्रीअरविंद ने भी ऐसा एक प्रयत्न किया। उन्होंने

supramental की बात की।

श्रीमोटा : वह बात की सत्य है। वह तो एक आदर्श की बात की। किन्तु वे स्वयं हुए न थे। मेरा ऐसा मानना है। उनको भी *प्रोस्टेट* का दर्द था। माताजी को भी अंत में नारे हो गये थे। वे कहते थे कि उनको supramental प्राप्त हो गया है। तो शरीर इस प्रकार का नहीं हो। Supramental हो तो शरीर संपूर्ण तंदुरस्त स्थिति का हो।

जिज्ञासु : Supramental कि संभावना।

श्रीमोटा : संभावना शत प्रतिशत की। संभावना नहीं, reality (वास्तविकता) मैं तो कहता हूँ। श्रीअरविंद ने कहा है, वह शत प्रतिशत सच है और वह process going on (प्रक्रिया चल रही है), वर्तमान में चल रहा है। वह process बहुत कम आदमी उसकी कीमत करते हैं। किन्तु बहुत बड़ी बात उसने कर दी है। खुली जाहिर कर दी। श्रीअरविंद ने की इस प्रकार का होगा शरीर हमारा।

जिज्ञासु : तब दुनिया में भी लोगों में भी अमुक ऐसा रूपांतर होगा।

श्रीमोटा : चौकस। लोगों का रूपांतर होगा। किन्तु जो प्रयत्नशील होंगे। Conscious (सभान) होगे उनका। Supramental व्यक्तियों, समाज पूरा नहीं।

जिज्ञासु : Struggling souls (प्रयत्नशील जीवों)।

श्रीमोटा : Conscious न हो और struggling न हो, उसे नहीं होगा। वे तो ऐसे के ऐसे ही जड़ रहेंगे। Supramental आ जाएगा। किन्तु मानो कि supramental होगा तो व्यक्ति होंगे। समाज पूरा नहीं होगा। Impossible. उसमें व्यक्तियों कोई होगी। कई व्यक्तियों होगी ऐसी। ऐसी व्यक्तियों के प्रभाव का असर में अमुक आगे बढ़ने के process में आयेंगे। वह अलग बात है। किन्तु यह शरीर उस प्रकार का हो, उस प्रकार का process चल रहा है वर्तमान में।

स्वप्न में देव के दर्शन का महत्त्व कितना ?

जिज्ञासु : स्वप्न में कोई देव के दर्शन हो या संत के दर्शन हो, जो आशीर्वाद दे। हाथ या पैर सिर पर रखे। कोई बार कोई आदेश भी दे उसका कुछ महत्त्व है सही ? और हो तो कितने अंश में ?

श्रीमोटा : महत्त्व है उसका। महत्त्व इसलिए कि उसके sub-conscious में यह सब आ गया है स्पष्टरूप से। जैसे हमें अग्नि स्पर्श करे और गरमी लगे वैसा यह साबित कर देता है कि उसके sub-conscious mind (अजागृत मन) में यह सब है। भरा हुआ है। वह साबित कर देता है वह एक मुख्य बात।

अब वह आशीर्वाद देता है कि कुछ करता है उस प्रकार की consciousness उसे जाग्रत होने के बाद रहती नहीं। उसे होश आता है कि ऐसा स्वप्न आया था। किन्तु बाद में उसके अनुसार उसका भाव उसमें जो जागना चाहिए, वह स्वप्नवाले आदमी को जागता नहीं। और बाद में निद्रा में से जागने के बाद में भी यदि ऐसा भाव जागे और उस भाव में यदि रहे तो उसे फिर लाभ हो। उदाहरणार्थ मुझे स्वप्न आया। मेरे गुरुमहाराज का कि मुझे सिर पर हाथ रखा और मेरी पीठ थपकी कि तेरे पर मैं राजी हूँ। ऐसा स्वप्न आया। किन्तु उससे मुझे ऐसा भाव जागे। मेरे शरीर के रोंगटें खड़े हो जाय। वह भाव मुझे कायम रहे तो ही मुझे लाभ। अन्यथा स्वप्न आपको इतना बताएगा कि आपके sub-conscious mind (अर्ध-जाग्रत मन) में यह सब है। वह बताता है। किन्तु बाद में आपको तो कुछ होता नहीं। जैसे थे वैसे के कोरे के कोरे तो कुछ नहीं होगा। उसका तफावत समझे न आप ?

उसे पाना किस तरह ? कर्म का महत्त्व

जिज्ञासु : मोक्ष की प्राप्ति में कर्म या उपासना क्या भाग निभाता है ? ज्ञान से ही मोक्ष होता है ऐसा सिद्धांत है। तो फिर आपने ही लिखा है।

आखरी सत्य ना कर्म, सत्य है पर कर्म से,
जानने सत्य को कर्म, कर्म श्रेष्ठ नहीं।

फिर आप ही लिखते हो कि

*कर्म ना सब कोई **उसे**, कर्म से पर वे रहे,*
*कर्म से पाने जो कोई जाय **उसे**, पा ना सके।*

ऐसा है तो **उसे** पाये किस तरह ? और ध्यान वह भी क्रिया ही है। इसलिए यह प्रश्न पूछा है।

श्रीमोटा : देखो न, एकदम कर्म उड़ न जाय। धीरे, धीरे, धीरे, करते, करते, करते, भगवान के स्मरण का कर्म लिया। वह स्मरण का कर्म लेते, लेते, लेते निरंतर का हो जाय बाद में उड़ जाता है जप। जप उड़

जाय। उसकी consciousness मात्र रहती हैं। कायम। श्वासोच्छ्वास से भी अधिक। अधिक तेज अंश में सजगता है। किन्तु तब हरि:ॐ, हरि:ॐ, हरि:ॐ ऐसा नहीं रहता। शब्द नहीं रहता यानी मूलभूत शब्द नहीं रहता।

जिज्ञासु : यानी कर्म रहता नहीं।

श्रीमोटा : कर्म फिर नहीं है उसे। कर्म करना सही तो प्रारंभ में कर्म नहीं करेगा तो नहीं चलेगा। कर्म करते-करते ऐसी हद पर पहुँच जाय बाद में कर्म ही उड़ जाय। फिर उसे कर्म नहीं रहता।

जिज्ञासु : तो awareness यानी ?

श्रीमोटा : Awareness ही बस है।

जिज्ञासु : Consciousness कह सके ?

श्रीमोटा : Conscious कह सकते।

जिज्ञासु : दूसरा यह कि श्रीरामानुजाचार्य किसी भी ज्ञान को मिथ्या मानते नहीं।

श्रीमोटा : बराबर है।

स्वप्न सत्य है, किन्तु स्वप्न में भोग किया हुआ अधिक बंधनकारक है।

जिज्ञासु : रस्सी में सर्प दिखता है या सीप में रूपा की प्रतीति होती है। वह सच ही है ऐसा वे कहते हैं। उसका कारण वे ऐसा बताते है कि सभी सब में रहा हुआ है। क्योंकि पंचीकरण हुआ है। इसलिए *' सर्वं सर्वत्र वर्तते '* ऐसा लिखते हैं। स्वप्न को भी वे सत्य मानते हैं और कहते हैं कि बहुत बार इश्वर अमुक अच्छे या बुरे कर्म के फल स्वप्न में अनुभव करा देते हैं। आप इस विषय में क्या कहते हो ?

श्रीमोटा : ***जीव***दशा में तो यह बात मानो सच है। ***जीव***दशा में हमारे अमुक कर्म हम भोगते हैं। मेरी मान्यता, समझ ऐसे प्रकार की है कि स्वप्न में भोगा और जाग्रत दशा में आप भोगो, किन्तु स्वप्न में भोगा जो वह सूक्ष्म करणों से भोगते हो। इससे वह अधिक बंधनकारक है। ***जीव***दशा में जीतेजागते भोगो और आप स्वप्न में कुछ भोगो तो स्वप्न में भोगो उसमें भी हमारे करण सूक्ष्म हैं। सूक्ष्म करणों द्वारा भोगते हो, वह अधिक बंधनकारक है। यह जाग्रतदशा में भोगते हो, उसकी अपेक्षा

स्वप्न real है। स्वप्न गलत नहीं है। गलत आप कहाँ से ? हमारे में जो है वही आता है। इससे स्वप्न real है। इतना ही नहीं, किन्तु हमें—आपको स्वयं को खोजने के लिए आपको वह मददरूप है, कि मेरे में ये-ये पड़ा है। ऐसा-ऐसा है। ऐसा है। वैसा है ऐसा समझ सकते हैं।

जिज्ञासु : स्वप्न में कोई सत्कार्य हो ?

श्रीमोटा : सत्कर्म हो, वह लाभ हो।

स्वप्न में सत्कर्म हो, वह अधिक अच्छा,

जिज्ञासु : तो।

श्रीमोटा : सत्कर्म हो, मानो कि जीवन में किसी को सत्कर्म हुआ। अच्छा काम किया। सत्कर्म हुआ। तो उसमें से उसे लाभ है। और बहुत लाभ है। ***जीव***दशा में, मैंने जैसे कहा कि स्वप्न में कर्म अधिक बंधनकारक है। जीतेजागते अभी हम हैं। वह जो भोगते हैं, वह स्थूल इन्द्रियों द्वारा भोगते हैं। वे सूक्ष्म इन्द्रियाँ हैं और सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा आपने सत्कर्म किया वह अधिक कल्याणकारक है। यह स्थूल से भी अधिक कल्याणकारक है। इससे यदि स्वप्न में भी भगवान का नाम ले सके तो उत्तम है। बहुत ज्यादा उत्तम है। जीतेजागते की अपेक्षा। यह तो मेरी समझ। सही-गलत भगवान जाने। किन्तु में समझा हूँ, उस तरह कहता हूँ आपको।

इससे वह जो रामानुजाचार्य ने कहा है कि स्वप्न भी सत्य है, इससे सत्य है। यह मेरे मन से फर्क नहीं है।

जिज्ञासु : सीप में रूपा दिखता है, उसका कारण उसमें रूपा का अंश है ही ऐसा कहते हैं।

श्रीमोटा : रूपा का अंश है। रूपा जैसा दिखता है।

जिज्ञासु : फिर भी अंश है, इसलिए दिखता है।

श्रीमोटा : जैसे रूपा, चांदी या रूपा कहें उसके जैसा रंग है। वह रंग वहाँ है। इससे उसका साम्य है वहाँ। किन्तु वह रूपा का अंश है। रूपा ही है ऐसा नहीं कह सकते।

जिज्ञासु : ऐसा स्पष्टरूप से कहते हैं।

श्रीमोटा : वे कहते हो तो भले कहते हो। मेरे मानने में नहीं आता। मेरी बुद्धि ना कहती है।

जिज्ञासु : और पतंजलि भी वह वस्तु कहते हैं।

श्रीमोटा : ऐसा साम्य है। साम्य कह सकते। क्योंकि बराबर रूपा के जैसा ही रंग है। उसमें फर्क नहीं है। इससे साम्य है रूपा का। किन्तु वह रूपा ही है ऐसा नहीं कह सकते। मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती।

पतंजलि का जात्यंतर परिवर्तन।

जिज्ञासु : पतंजलि एक बात करते हैं। जात्यंतर परिवर्तन की। एक वस्तु का जिस किसी में परिवर्तन हो सकता है।

श्रीमोटा : वह हो सकता है।

जिज्ञासु : वे अब कहते हैं। होता है उसका कारण यह है कि उसमें वह समाया है। इसलिए होता है। वे कहते है कि पंचीकरण हुआ है। तो हमारे में जल, पृथ्वी, तेज, आकाश, वायु वे सभी रहे हैं। अब कोई भी पदार्थ उदाहरणार्थ लोहा है, उसका सुवर्ण में रूपांतर करना हो तो वह है इसलिए होता है। जो नहीं है, वह कभी प्रकट होता ही नहीं। ऐसा उनका पूरा argument है।

श्रीमोटा : हाँ, किन्तु जो बात उन्होंने की, किन्तु हम समझते नहीं है कि लोहा सोना कभी नहीं होगा। कभी नहीं होगा। पतंजलि क्या पतंजलि का बाप करे तो भी नहीं होगा। पारा में से सोना होगा। क्योंकि उसमें रचना है दोनों की लोहा की और सोना की रचना। ये दोनों की रचना में ही फर्क है। जब पारा और सोना ये दो के परमाणुओं और अणुओं में थोड़ा-सा ही फर्क है। इससे एकदूसरे की बनावट से नजदीक है। इससे इसमें से (पारा में से) सोना हो सकेगा। किन्तु आप कहते हो कि लोहा में से सोना हो ऐसा पतंजलि कहते हैं तो पतंजलि कहते हो तो उनको नमस्कार। किन्तु मेरी बुद्धि में, मानने में नहीं आता।

रूई में से ग्रेनाईट में परिवर्तन की बात।

जिज्ञासु : अब आपको कहूँ कि बनारस में एक बड़े प्रोफेसर थे। Physics के। वे विशुद्धानंद सरस्वती करके एक व्यक्ति थे। उनके पास यह जात्यंतर परिवर्तन की बात चलती थी और मिले। फिर उन्होंने कहा कि कोई भी वस्तु का किस में भी रूपांतर हो सकता है चाहो उसमें। फिर उन्होंने एक रूई दी और उन्हों ने कहा कि ग्रेनाईट में इसका परिवर्तन करो। तो उन्होंने सूर्य की किरणों में एक लेन्स रखा और थोड़ी ही देर में उसका रूपांतर हो गया। अब उन्होंने कहा कि यह सूर्यविज्ञान का

process है। इसमें योग की भी प्रक्रिया नहीं हैं, उन्होंने कहा। यह सूर्यविज्ञान ऐसा है कि वह *क्रीस्टल* धरने से वह अमुक प्रकार का concentration करने से चाहे उसमें रूपांतर होता है। उसका कारण वही है। प्रत्येक में प्रत्येक समाया हुआ है। और मूलभूत सिद्धांत वह मुद्दा '*सर्वं सर्वत्र वर्तते*'। सभी सब में रहा हुआ है। ऐसा करके उन्होंने उसका रूपांतर किया।

सिद्धांत रूप से मान सकते हैं, हकीकत रूप से नहीं

श्रीमोटा : एक सिद्धांत रूप से सब मान सकते हैं। किन्तु actual ऐसा होना अभी मेरे मानने में नहीं आता। उसने करके दिखाया हो तो भले करके दिखाया हो, किन्तु मेरे मानने में नहीं आता। वह जो काँच बनाया हो या काँच कोई अमुक प्रकार का हो। उसका तेज जो आये, वह तेज अलग प्रकार का हो, उसमें से ऐसा कुछ बन सके।

जिज्ञासु : फिर उन्होंने ऐसा भी कहा कि इस प्रकार की लेबोरेटरी बनाये तो ? उन्होंने कहा कि बना सकते हैं। फिर उसके लिए स्थान भी तय किया।

श्रीमोटा : तो बनाओ न भाई। ऐसा हो तो दिखा न। मैं जाऊँ। मैं सीखने को तैयार हूँ। मैं तो यह सब सोना कर दूँ। हमारा देश बहुत गरीब है। बेचारे गरीबों का उद्धार हो जाय। मुझे तो अच्छे काम करने के लिए बहुत पैसे चाहिए। तो किसी के पास जाना न पड़े। माँगना न पड़े। मुझे कोई सिखाने तैयार हो तो आज ऐसे शरीर से जाने तैयार हूँ।

जिज्ञासु : फिर उन्होंने उनके गुरु को पूछाया तो उस *लेबोरेटरी* बनाने की मनाई की।

अनुभवी भी ऐसा परिवर्तन सार्वत्रिक रूप से नहीं कर सकते

श्रीमोटा : अरे ! किन्तु कोई कहेगा ही नहीं। ऐसा सब हो ही नहीं सकता। यह सार्वत्रिक रूप से कोई ऐसा कुछ बन सकता ही नहीं। वह नहीं हो सकता। उसके दिमाग में। उसके दिमाग में यह आये ही नहीं। यह तो निमित्त अनुसार ही होगा। कोई अनुभवी हो तो भी सार्वत्रिक रूप से नहीं कर सकता।

जिज्ञासु : योग की कोई प्रक्रिया नहीं है। कहता है कि physics के जैसा सूर्यविज्ञान है। चंद्रविज्ञान है। ऐसे अनेक प्रकार के विज्ञान हैं।

श्रीमोटा : वह होगा भाई। हमें उसका कुछ पता नहीं।

जिज्ञासु : (अ) भगवान के सगुण स्वरूप के जैसे कि शिव,

गणेश आदि अनंत प्रकार हैं या एक ही प्रकार होता है। और रूप नाम को अधीन होने से जब साधक के हृदय में प्रकाशित होता है, तब अलग-अलग साधक को अलग-अलग प्रकार से भासता है या एक ही प्रकार से ? तात्पर्य कि शिव, विष्णु आदि सगुण स्वरूप के भी अनंत प्रकार हैं या एक ही प्रकार होता है ?

(ब) कोई साक्षात्कार सम्पन्न गुरु का निरंतर नामस्मरण किया करे तो वह गुरु अपने शरीर की जो आकृति होती हैं, उसी रूप से दिखता हैं ? और जो अपनी आकृति से भिन्न स्वरूप से दर्शन देता है, उसमें कोई रहस्य होता है ?

(क) भगवान के निर्गुण स्वरूप का साक्षात्कार नामस्मरण से संभव है ?

देवों तो अलग-अलग समझना मूल तो एक ही चेतन।

श्रीमोटा : हाँ। एक ही। चेतन एक ही मात्र है। देवों की अलग-अलग कल्पना की वह तो शास्त्रकारों ने। अनुभवियों इसको स्वीकार नहीं कर सकते। निराकार को स्वीकार ना कर सके और छोटे से छोटा— जैसे बालक सीखने जाता है तो एक लिखाते हैं। शून्य लिखाते हैं, लाइन बनाते हैं यों करके सिखाते हैं, इस तरह अलग-अलग साधनों द्वारा आदमी व्यक्तिओं उसे ग्रहण कर सकते हैं। इसलिए अलग-अलग देवों की हमारे लोगों ने, अनुभवी लोगों ने बात की। वह एक ही चेतन। दूसरा कोई है ही नहीं।

और गणपति या गणेश का अर्थ करने जाओ तो *गणानाम ईश:* वृत्तियों का स्वामी तो भगवान ही हैं। यह तो गणेश का नाम दें इसलिए गणेश को आपने एक देव बना दिया।

देवों का विशिष्ट सगुण स्वरूप नहीं होता।

जिज्ञासु : किन्तु उसका कोई विशिष्ट सगुण स्वरूप होता है सही ?

श्रीमोटा : विशिष्ट सगुण स्वरूप नहीं है। ये सब देवों का । यह तो फलाना देव। ब्रह्मा, विष्णु और महेश। वह तो तीन faculty। एक चेतन है। उसके तीन functions। एक सर्जन, एक रक्षण-पोषण और एक लय। ये तीन कर्म चेतन के। तीन देव बनाये। लोगों की समझ में आये इसलिए। ब्रह्मा, विष्णु और महेश। कोई ब्रह्मा भी नहीं है या विष्णु

भी नहीं है या नहीं है महेश। एक ही चेतन ही है। ये अलग-अलग हैं, वह मैं मानता नहीं। किन्तु ये किए हैं इसलिए कि देव ऐसे लोग—जंगल के भील लोगों में घूमता था। वहाँ वे लोग ये गणपति रखते चित्रकाम करते। पेड़ पर चित्र बनाते। उसे ले सकते। ग्रहण कर सकते। ज्यादा ऊँचे चेतन की बात करो तो नहीं ले सकते।

जिज्ञासु : तो गणेश के नाम का स्मरण किया करे तो ?

श्रीमोटा : तो करे।

जिज्ञासु : तो जो रूप का दर्शन हो, वह अमुक प्रकार का हो ऐसा न ?

अपने मन में धारण किया हुआ रूप ही प्रकट हो

श्रीमोटा : वह तो उसके मन में धारण किया हो, वह होता है। कुछ आकाश में से अवतरण नहीं होता। अपने मन में जो चिंतन हो, जिसका जो प्रकार का उस प्रकार का और यह गणेश का रूप दिखता है वह भी symbolic है पूरा। सूँढ और बड़ा पेट। और यह सब दिखाता कि वह symbolic है। किन्तु यह सब अब कहाँ कहूँ ? मुझे दमा है, एक तो बोल सकता थोड़ा। गला मेरा बैठ गया है। रोगवाला है। मोटी और कर्कश आवाज गले में से निकलती है। यह तो आपके सत्संग की बात आती है मुझे आनंद होता है। इससे मुझे उसका दर्द कुछ नहीं होता। किन्तु अलग-अलग प्रकार के लोगों को समाज में ग्रहण करना है। एक ही प्रकार का समाज नहीं है कि उत्तमोत्तम ग्रहण कर सके। वह हरएक को अनुकूल आये ऐसे हमारे ऋषिमुनियों ने उस-उस प्रकार के देवों की स्थापना की। उन लोगों को ऐसा विचार आया।

जिज्ञासु : वह कल्पित क्या ?

देवों के स्वरूप कल्पित हैं Reality नहीं।

श्रीमोटा : कल्पित। **Reality** कुछ नहीं। **Reality** चेतन इतना ही। फिर कोई गणपति का भक्त हो उसे गणपति जैसे आकार का दर्शन हो। गणपति का दर्शन हो, यह बात चौकस। उसमें मेरी ना नहीं। वह उसे **reality** हो जाती है। किन्तु वह एक मर्यादा में बंद हो जाता है। हमेशा आदर्श रखना तो सर्वोच्च आदर्श रखना।

गणपति की स्तुति करता होता या पाठ करता होता हो तो भी मेरे मन में मेरी बुद्धि से ऐसा ही समझूँ कि यह चेतन ही है। ऐसा करके करना अनिवार्य है। साधक के लिए या कोई भी करनेवाले के लिए।

भगवान की तरह अनुभवी जन्म धारण करता है।

जिज्ञासु : अनुभवी पुनर्जन्म धारण करता है, उसका हेतु क्या होता है ? वह जन्म कैसे धारण कर सकता है ? क्योंकि उसकी अंत:करण रूपी उपाधियाँ तो नष्ट हो जाती है।

श्रीमोटा : जैसे भगवान जन्म लेते हैं, वह तो हम कबूल करते। करें न ? हें ? उसे तो कुछ होता नहीं। एक ऐसा abstract being है। एक, वह भी समय पर अमुक संजोग में जन्म लेता है। वह हमारे शास्त्र कहते हैं। यदि उसे मानें तो फिर अनुभवी उसी प्रकार का हो गया होता है। भगवान का जो being है। केवल उसका शरीर है, उतना ही फर्क। शरीर है, इतने कारण से ही वह उसकी (भगवान की) तुलना में नहीं आ सकता। बाकी तो अंदर का और उसके सब मनादिकरण और अंदर सब तो उसके (भगवान के) जैसे ही हो गये होते हैं। उसमें कोई फर्क नहीं होता।

मुझे स्त्री का अवतार क्यों लेना है ?

अब उसका जीव इस जन्म में संसार में रहा है, तब उसे अवतार लेने का मन हो। उदाहरणार्थ मेरी बात कहूँ कि मैंने मेरे मन से दृढ़ किया कि मुझे स्त्री का ही अवतार लेना है। अब उसमें मेरे पास एक कारण है। हमारे देश का उद्धार करना है। मैं पढ़ता था, तब से मेरे मन में बहुत तमन्ना कि समृद्ध हुए बिना हमारे देश को कोई गिनती में नहीं लेगा। तब और वर्तमान में भी समृद्ध हो सके ऐसा वातावरण नहीं है, फिर भी मैं ऐसे ही प्रकार के काम करता हूँ कि जिसके द्वारा देश की समृद्धि हो ऐसे काम करता हूँ। और यदि देश को समृद्ध करना हो तो मुझे बुद्धि से इतना सब सच्चा समझ में आया है कि ये मेरे देश की स्त्रियाँ जब बहादुर, पराक्रमी, शौर्यवान, धैर्यवान, साहसिक, हिम्मतवान, मर्दानगीयुक्त होगी, तब हमारी प्रजा ऐसी होगी। ऐसी स्थिति के सर्जन के लिए मुझे स्त्री होना है कि जिससे उनके साथ हिल-मिल सकूँ । सब कर सकूँ। वह ऐसे किसी अनुभवी को इस जन्म में संसार में रहते-रहते कुछ ऐसा स्फुरित हो जाय तो वह उस प्रकार का जन्म लेता है। फिर सामान्यत: जो अनुभवी को ऐसा कुछ बिलकुल होता नहीं कि यह होना है। जन्म लेना है, वह भी नहीं होता।

मेरी इच्छा नहीं है, वह तो स्वयं स्फुलिंग है।

जिज्ञासु : वह स्फुरण कह सकते ?

श्रीमोटा : उसे स्फुरण या स्फुरण से दूसरा कुछ कहो। जैसे भगवान अवतरण करते है और कहते हैं कि मैं मेरे भक्त का रक्षण करने के लिए अवतरण करता हूँ। धर्म का रक्षण करने के लिए अवतरण करता हूँ। वह जैसे कारण है, तब उसमें उस कारण में कोई मनादिकरण नहीं है। कोई हृदय नहीं है। कोई विचार नहीं है। कोई प्रक्रिया नहीं है। एक स्वयं स्फुलिंग है। उस तरह उसको (अनुभवी को) भी ऐसा होता है कि ऐसा करना है। यह करना है। ऐसा उसमें कोई—कोई प्रकार का सांसारिक, व्यावहारिक, मनादिकरण का कोई विषय उसे वहाँ स्पर्श नहीं करता। क्योंकि जैसे भगवान अवतार लेने का करता होता है। उसमें कोई प्रकार का उसे उसके मन में या उसके मनादिकरण में या तो उसके अंतर के भाग में या अंत:करण में या तो उसके अत्यंत आत्मा के सूक्ष्म भाग में भी किसी प्रकार का विचार जरा भी होता नहीं।

इन्दुकाका के बेटे का प्रसंग

एक आदमी रास्ते में जाता हो और ऐसा बना भी सही। मेरा इन्दुकाका है। वह एक बार उसके दो बेटे और एक पारसी लड़के के साथ कुछ खरीद करने गये। दुकान में पूछा, भई, इसकी क्या कीमत है ? तो ४५ रुपये हैं। इन्दुकाका ने देखा तो पैसे तो १५ निकलें। उसके बाद इतने में तो उस छोटे बेटे ने कहा, हरि-हरि, देख तेरे चप्पल के नीचे रुपये हैं। तेरे चप्पल नीचे रुपये हैं। देखा हटाके तो ३० रुपये किसी के गिर गये होंगे। किसी भी तरह ३० रुपये उसे मिल गए। और १५ रुपये तो थे। ऐसे वे ४५ रुपये दे दिये। उस तरह उन लोगों को किसी ऐसे कारण से ऐसा striking ऐसा कुछ बन जाता है। प्रसंग जीवन में, संसार में तो बने बिना तो रहता ही नहीं।

तब ऐसे प्रसंग अमुक देखे। बहनों के। बहनों की बहुत अवहेलना हो रही है। इसमें से उत्तम प्रजा किस तरह पैदा हो सके ? ऐसा देखते ही तय हो गया। मुझे मन में कि हमें यह (स्त्री का) ही जन्म लेना। बाकी मुझे कोई जन्म लेना आवश्यक नहीं है।

मेरा स्त्री का अवतार कैसा होगा ?

किन्तु जन्म लेना है स्त्री का। किन्तु बच्चे पैदा करे ऐसी नहीं। बच्चे पैदा करे ऐसी स्त्री नहीं होऊँगा मैं। उस जन्म में मुझे वैभव-विलास का पार नहीं। जैसे-वैसे मुझे कुछ माँगने जाना नहीं पड़ेगा। रूप भी बहुत सुंदर कि एक नखरा। एक ही नखरा। ज्यादा जरूर नहीं। उसे.....उसे

वश कर देने में एक ही नखरा बस हो। ऐसा सुंदर रूप भगवान देंगे मुझे। इसलिए कि ये सबको तब उस स्थिति में ये पुरुषों को सही तरीके से समझा सके। तो तो माने बिना रहेंगे नहीं। जितने जितने संबंध में आएँगे उनको छुटकारा नहीं होगा।

मैं जो कहूँगा उस समय पर उस बोल के पीछे बिजली निकलती होगी उसे करती force होगी। बोलने के लिए वह कोई अलग प्रकार की होगी। आज के जैसा नहीं होगा तब। इससे मैंने ये सब देखा संसार में कि समृद्धि होने के लिए ये बहनों जहाँ तक उनका जीवन ऐसा नहीं हो, वहाँ तक समृद्धि नहीं होगी। समृद्धि कुछ लक्ष्मी के द्वारा होती है, वह मैं मानता नहीं। वह बहुत नगण्य भाग निभाती हैं। किन्तु आदमियों के कारण उसकी खुमारी और खमीर, उसके गुण ये सब द्वारा संस्कृति तो समृद्ध होती है, वह मुझे बहुत चौकस लगा हुआ है।

सब अनुभवी जन्म नहीं लेते

इससे इस तरह अमुक आदमियों–अनुभवी पुरुषों कुछ ऐसे प्रसंगों के कारण अपने आप निश्चित हो जाता है, उनमें। उसे भगवान भी जैसे समय पर अवतरण करते हैं, किसी कारण के लिए उस तरह ये लोग भी किसी कारण के लिए अवतार लेते होते हैं। किन्तु सभी नहीं लेते होते। किन्तु वे सब अवकाश में हैं सही। इससे लय पा गये हैं नहीं। कोई कुछ है नहीं ऐसा नहीं। इस पृथ्वी पर सब पूरे ब्रह्मांड में वे सभी हैं। हैं अपने–अपने स्थान पर, स्वयं अपने आप। अमुक तरह से वहीं रहते होते हैं। वे लय पा गए हैं। लय पा गए हैं चेतन में। चेतन सकल ब्रह्मांड में फैला हुआ है। किसी एक ही ठिकाने है ऐसा नहीं है। वह जैसे सब ठिकाने है। उस तरह ऐसे लोग जो अनुभवी लोग है, जिसे जन्म लेना है ही नहीं। ऐसे लोग अदृश्य नहीं है। लय पा गये होते हैं। चेतन के साथ। इससे चेतन जैसे सर्वत्र है वैसे वे भी ये लोग अनुभवियों सर्वत्र हैं।

फिर भी लय पाये हुए अनुभवियों भक्त को दर्शन दे

किन्तु उसका कोई सचमुच भक्त हो तो उसे ऐसा अनुभव होता है। जहाँ गया हो वहाँ और उसके सद्गुरु में दर्शन हो उसे। या तो काम हो, तब उसे ऐसी प्रेरणा उसकी तरफ से मिलती है। इससे उसकी उपस्थिति शरीर जाने के बाद भी बहुत ज्यादा स्पष्ट। उस शरीर की उपस्थिति से भी वह उपस्थिति बहुत कामयाबी। और उसका स्पर्श, आवाज, उसके साथ का एक थोड़े समय का भी संबंध—इतना सारा हमें जीवन में एक स्फुरण और तेज दे दे, ऐसी हिम्मत और टिकने की शक्ति

दे, बिलकुल असंभव काम हम तब कर सके। उसके साथ की थोड़े समय की हमने उपस्थिति दी होती है।

जीवनमुक्त को प्रारब्धकर्म हो सही ?

जिज्ञासु : हमारे उपनिषदों में यों कहा—

'तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति'

यह छांदोग्य उपनिषद का वाक्य है कि अनुभवी को विदेहमुक्त होने में इतनी ही देर लगती है कि जहाँ तक उसके प्रारब्ध कर्म क्षीण नहीं हो जाते। प्रारब्ध कर्म क्षीण हो जाय फिर वह विदेहमुक्त हो जाता है। यानी घटाकाश जैसे महाकाश में लीन हो जाता है, उस अनुसार उसकी स्थिति होती है, ऐसा छांदोग्य उपनिषद आदि में और शंकराचार्य आदि ने भी कहा है। सांख्यदर्शन में भी यह बात की हुई है।

श्रीमोटा : अब आप यह जो बोले हो साहब उसमें ही वह बात है। फिर अनुभवी को कोई कर्म रहते नहीं।

जिज्ञासु : प्रारब्ध कर्म क्षीण हो गये बाद में।

श्रीमोटा : प्रारब्ध कर्म क्षीण हो गये न ? हाँ, किन्तु प्रारब्ध कर्म क्षीण हो गए ऐसा कहते है न ?

जिज्ञासु : भोगने ही पड़ते हैं। अनुभवी और ऐसा शास्त्र कहता है।

श्रीमोटा : तो वह बात ठीक नहीं। वहाँ मेरा विरोध है। बहुत लोग कहते हैं कि अनुभवी को भी प्रारब्ध के कर्म हैं। वे करने होते हैं। तो मैं ऐसा कहता हूँ कि वह अनुभवी ही नहीं है। अनुभवी को काल नहीं है। अनुभवी को भूतकाल, वर्तमानकाल या भविष्यकाल है नहीं भई। अनुभव में काल नहीं है। स्थल भी नहीं है। कोई स्थल, काल और संजोग वह अनुभवी को नहीं है। यह बात मेरे मन से शत-प्रतिशत विश्वास, अनुभव से मुझे हुई है। तब वह यदि हो ही नहीं तो फिर वह प्रश्न रहता नहीं। वह प्रश्न यानी कर्म का प्रश्न कि उसके भूतकाल के कर्म अंत में उसे करने पड़ते हैं। जैसे कि कर्म की मान्यता है, वह मैं मानता नहीं।

कर्म तो उसे करने पड़ते हैं। वह तो एक चौकस बात। हम देखते हैं, उसे कर्म करने पड़ते हैं। उसे इस तरह से उसका उसे ज्ञान था। वह अनुभवी व्यक्ति ऐसा होता है, वह भी सत्कर्म हुआ। दूसरे को उद्धार

करने के लिए दूसरे को ऊँचे लाना उसे वह अपना धर्म समझता है। किन्तु सही रीत से वह धर्म नहीं हैं। वह तो स्वयं है, उसमें आया हुआ। सूर्य कभी ऐसा नहीं मानता कि मैं प्रकाश देता हूँ। उस तरह अनुभवी पुरुष में दूसरों को मेरे द्वारा मैं उद्धार करता हूँ या उसे ज्ञानी बनाता हूँ ऐसा उसे होता नहीं। कभी भी उसके मन में होता नहीं। वह कभी स्फुरण होता ही नहीं उसे। किन्तु उसके existance से उसके कर्म से ऐसा बनता है।

जीवनमुक्त को कर्म कहाँ से आया ?

तब वह कर्म आया कहाँ से ? ऐसे सोचें तो उसे तो कर्म ही नहीं है। कर्म कहाँ से आया ? कर्म तो करता है ऐसा हमें लगे। वाजिब प्रश्न है।

तब जो जीवन में जीता होता है। तब जीते-जीते जीवन में उसे कुछ न कुछ किसी कारण से कर्म आ पड़ता है। स्वयं। वह उसके प्रारब्ध के कारण या वर्तमान के कारण हो तो कुछ कर्म से बंधन में आया हुआ आदमी मैं कहूँ उसे। वह (अनुभवी) कर्म से बंधा हुआ नहीं है। अपने आप कुछ वस्तु उसमें आ पड़े। वह यदि अनुभवी फिर वह जिस तरह जैसा लगे रहता है ऐसा दूसरा कोई लगा न रह सके। किन्तु वह फिर एकदम नि:स्पृही साक्षीभाव से। उसके साथ हिल-मिल गया हो फिर। कर्म को मेरी-आप की तरह नहीं करेगा। वह कर्म को इतनी सारी एकनिष्ठा से, एकभाव से, वह संपूर्ण योग्यता से कर्म करेगा। वह लस्टम-पस्टम यद्वातद्वा वह कर्म नहीं करेगा। जितने-जितने व्यक्तियों को उसका स्पर्श हुआ, उन व्यक्तियों में उसका स्फुलिंग गया। वह बात तो सब कर गया। किन्तु अनुभवी को प्रारब्ध नहीं है, वर्तमान भी नहीं है और भविष्य भी नहीं है। अनुभवी को काल नहीं है। अनुभव में काल नहीं है। उसका वह हम स्वीकार कर लें तो फिर उसे प्रारब्ध और यह वर्तमान और भविष्य यह कहाँ से आ सके ?

जिज्ञासु : सांख्यदर्शन में भी उस प्रकार ही कहते हैं। शंकर भी उस प्रकार कहते हैं। इसके quotations इस प्रकार हैं।

प्रारब्ध यस्तु इदं - मूज्यताम्

अथ पर ब्रह्मात्मनाम श्रूयताम्

अनुभवी को स्थल, संजोगों और काल नहीं है तो प्रारब्ध कहाँ से हो ?

श्रीमोटा : एक समय मानो कि एक आदमी प्रयत्न करता है। मानो कि साधना करता है। साधना करते-करते स्वयं यह सब भोगता है।

यों करते-करते उसे अनुभव हुआ। वह यदि अनुभव में स्थल, संजोग और काल नहीं है वह आप स्वीकार करो ? हें ?

जिज्ञासु : हाँ।

श्रीमोटा : स्वीकार करो सही ?

जिज्ञासु : उसमें शंका ही नहीं। बिलकुल स्वीकार करता हूँ।

श्रीमोटा : तो तो फिर उसे प्रारब्ध कहाँ रहा ? यदि स्थल, काल और संजोग उसे नहीं है। वह यदि बात सच हो तो उसे प्रारब्ध कर्म रहता ही नहीं।

दूसरा तब कि ऐसे बड़े-बड़े पुरुषों को हमारे द्वारा गलत कहा जाय ? उसका कुछ rational खोजना चाहिए।

जिज्ञासु : मुझे वही विचार आया था।

अनुभवी को स्वयं का प्रारब्ध कर्म नहीं है। किन्तु उनके साथ मिले हुए का प्रारब्ध कर्म है।

श्रीमोटा : वह सोचे। हम जीते थे। शरीर था। तब उनको प्रारब्ध न था। किन्तु जिनके साथ जुड़े हुए थे। किसी न किसी कारण से*। उनको (अनुभवी को) कोई प्रारब्ध या वर्तमान या भविष्य कुछ न था। किन्तु वे संसार में जीते थे। और सब संसारी के साथ काम पड़ा था। तब वे लोगों को तो उनके साथ प्रारब्ध आदि सब था। इनको (अनुभवियों को) नहीं है वह बात ठीक। किन्तु उन सबको तो था। यह तो कबूल करना ही पड़े। कहो।

जिज्ञासु : हाँ जी।

श्रीमोटा : और साथ-साथ रहना है। इससे XY उसका प्रारब्ध है। वह हमारे साथ जुड़ा हुआ है। इससे अनुभवी के साथ वह जुड़ा हुआ है। उसका (अनुभवी का) तो कुछ नहीं है। बिलकुल नहीं है। किन्तु दूसरे का प्रारब्ध कर्म उस अनुभवी के साथ जुड़ा हुआ है। क्योंकि वह तो अनंत जन्म लेकर आया है। अब अनुभवी हो गया। भले, किन्तु उसके साथ के जो सब जीव थे, पहले के और आज के वे सबको उसके साथ प्रारब्ध कर्म हैं। दूसरे को। उसको (अनुभवी को) भले न हो। उसको (अनुभवी के साथ जुड़े हुए जीवों को है।) दूसरे सबको है।

संसारी की तरह श्रीराम सीता के लिए रोये - किस लिए ?

वह फिर ऐसा है अनुभवी कि बिलकुल सांसारिक भी उसकी

* यह बात पूरी होने के बाद श्रीमोटा स्नान करने गए। श्री ए. जी. भट्ट साहब को ऊपर निशान की जगह पर बात में विश्वास बैठता न था। श्रीमोटा स्नान के लिए खड़े हुए इससे उन्होंने अपने हाथ में से श्री शंकराचार्य का 'विवेक चूड़ामणि' पुस्तक खोला। और खोलते ही बीच में से जो पन्ना पर नज़र पड़ी उसमें एक श्लोक था कि जिसका अर्थ उपर मुजिब था। उसमें उनको आनंद हो गया और मुझे बताया। इन्दुकुमार देसाई।

परम पराकाष्ठा पर वह व्यक्त होता हो। श्रीरामचंद्र भगवान थे। सीतामाता को देखा नहीं, तब जो कल्पांत करते हैं। वह कल्पांत अगर हम पढ़ें तो हमारा दिल भी द्रवित हो जाय साहब। तो इतना बड़ा ज्ञानी पुरुष यों क्यों रोता है ? तो किसी को समझ में आये नहीं। किन्तु वह रोता है। तो उसके (सीतामाता) लिए सांसारिक रीति से रोता है, मोह की रीति से रोता है, ऐसा नहीं होता। वह प्रेम की कोई पराकाष्ठा है। किन्तु उस रोने के पीछे उसका ज्ञान का हेतु है। वह बहुत कम समझते हैं कि श्रीरामचंद्र भगवान रोये। रोये इससे एक प्रकाश हुआ। उसमें से निकला और उस प्रकाश के कारण सीतामाता को कैसे जल्दी पा लें वह उनको तय हुआ। कि भई, फलाने ठिकाने हम चलें। किष्किंधा या कुछ नगरी ऐसा था। उस भील राजा के या किसी के वहाँ मुकाम करते हैं। वह उनका रोना वह भी ज्ञानप्रेरक। दूसरे किसी को ख्याल में नहीं आये। दूसरा कोई नहीं समझ सके उसे।

मैंने तो अनेक को पूछा था कि यह आदमी ऐसा आदमी रोय वह तो संसारी जैसा रोय ही नहीं। उसके पीछे का हेतु और ज्ञान क्या ? वह कहो। तो किसी ने मुझे जवाब दिया नहीं।

श्रीराम जो कर्म के लिए रोये वह तो उसके ज्ञान के लिए। किन्तु हेतु उसका वह है कि जो कर्म के लिए रोये हैं, उस कर्म का ज्ञान उसे उसके आगे-पीछे के पहलुओं की समझ आ जाय उस समय में। क्योंकि कर्म में वह एकाग्र हो गये और फिर उसे मनोभाव कहो, भाव कहो, किसी तरह पूर्ण रूप से एकाग्र हो गये हुए हो। ज्यों का त्यों नहीं। कोरी रीति से नहीं। इससे उसे उसके पहलुओं, उसके हल के रास्ते अपने आप उसके अंदर आ जाते हैं सही।

तो उसका कौन सोचता है ? ज्ञानी का प्रत्येक कर्म ज्ञानपूर्वक का है। किन्तु वह कोई समाज स्वीकार नहीं कर सकेगा। इससे अनुभवी के कर्म वह जैसे स्वयं के अकेले के लिए होते हैं, उस मान्यता ही मैं तो स्वीकार नहीं करता। उसे अपने लिए तो कोई कर्म ही नहीं है। कोई कर्म स्वयं के लिए है नहीं। जो कर्म हैं, पूरे संसार के लिए ही। सकल मानवी के कल्याण के लिए ही है। किन्तु मानवी कोई स्वीकार कर सके ऐसा होता नहीं।

जिज्ञासु : अनुभवी जब ***जीव***दशा में होता है, उसके बाद जीवन-मुक्त बनता है और जीवनमुक्त होने के बाद विदेहमुक्त होता है। तब तक उसे अपने प्रारब्ध कर्म भोगने पड़ते हैं ऐसा कहना है। इससे अब

मेरा कहना है कि प्रारब्ध कर्म ही न हो तो उसका मृत्यु भी इच्छामृत्यु ही होना चाहिए।

श्रीमोटा : वह कहूँ। यदि हम एक बार यह स्वीकार करें कि अनुभव यानी अनुभव को आप कोई भी शब्द दो, दिव्यमुक्ति है, फलानी मुक्ति है, जीवनमुक्ति या ऐसा नाम आप दो उसके साथ मुझे कोई निसबत नहीं है। अनुभव के साथ निसबत। तब यदि अनुभव है तो उसे स्थल, संजोग, काल कुछ है नहीं, वह स्वीकार करें। हकीकत अब वह यदि नहीं है। वह यदि है नहीं तो फिर वह कालातीत हुआ है। जैसे गुणातीत है। गुणातीत है। भावातीत है। कालातीत है। वह कालातीत भी है। इससे ऐसा मानवी वह यदि कदाचित् बोलता हो तो केवल इस समय पर्याप्त ही है, ऐसा नहीं होता। उसके बारे में बहुत गहरा विचार करना चाहिए।

यह तो भले न किसी भी तरह कि यह रमेश भट्ट को मैंने दो-चार सुना दी हो मसखरी में, किन्तु उसके पीछे भी रहस्य है। वह किसी के खयाल में नहीं आये। कि क्यों यों बोले ? किन्तु उसका कुछ भी... कुछ भी बोलने का वह रहस्यमय है। भेदवाला है। भेदवाला यानी एकदूसरे से अलग होना उस हद का नहीं। किन्तु गहरा मर्म रहा है, ऐसा उसमें वह किसी के ख्याल में आ सके ऐसा नहीं है। किन्तु उसका प्रत्येक कर्म हेतुपूर्वक का है। किन्तु वह हेतु सोचता नहीं है। उसने सोचा नहीं है। अपने आप है, वह हेतु उसमें।

उसका हेतु किसी को मिले उसे भगवान का स्पर्श हो।

उसका एक ही हेतु है। अनुभवी का दूसरा कोई हेतु नहीं है कि सब किसी को जो कोई मिले उसे यह भगवान का स्पर्श हो, वही उसका हेतु है। उसका हेतु ही उतना है, मात्र जीवन में किसी न किसी तरह से उसे (अनुभवी के संपर्क में आनेवाले को) भगवान का स्पर्श हो और उसे (अनुभवी को) अनंत धैर्य है। वह बात भी चौकस है। अनंत धैर्य। अभी हो जाय ऐसा कभी उसके मन में जागता नहीं। अनंत धैर्य है उसे। कि आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। कभी भी वह जागने का है। उसका उसे निश्चितपन है। उसका उसे ज्ञान भी है। वह समझता है। आज नहीं तो कल फूटेगा। इससे वह उसके अंतर में आता है।

और इसके लिए ही अनंत काल से साहब, देखो आप, कुछ कितने साल से संत-समागम का महिमा है। गाया गया है। आप कहो इस काल में भी संत-समागम का महिमा गाया गया है। वह मैंने उस पर बहुत

विचार किया था कि.....यह संत-समागम का इतना महिमा क्यों ? कुछ कहने से चलते आया है ? एक tradition चली आई है ? कि यह है क्या ? उसके पीछे का कोई रहस्य क्या है ?

संत-समागम का महत्त्व

उस विषय में मैंने चिंतवन किया था और तब मुझे समझ में आया कि यह समागम हैं। संत लोगों का समागम और उसके पड़े हुए संस्कार जैसे चित्त में पड़े हुए काम-क्रोधादिक के संस्कार उदय-वर्तमान होते हैं। उस तरह यह जो संस्कार उसके पड़े। वे उदय-वर्तमान हो, तब वही रीति से दुगुने जोश से हमें उसमें खिंच जाते हैं और यदि हमें भगवान की कृपा हो और उसमें लगे रहकर साधना करने लगे तो जल्दी। क्योंकि पीछे का एक force है। ऐसा एक force है। वह। force आपकी इच्छा से या आपकी जिज्ञासा से अभ्यास करो उसमें वह नहीं आये कभी। यह मैंने स्वयं अनुभव की हुई बात कहता हूँ।

इससे इस समागम का महिमा बहुत बड़ा, किन्तु आज वह समाज में से निकल गया है। उसका रहस्य कोई जानता नहीं। और मानो कि मेरे जैसा कोई आपके पास तो बहुत खुले दिल से बात करता हूँ। किन्तु दूसरे के साथ बात नहीं करता। अन्यथा तो ऐसा ही माने कि अपनी महिमा दिखाने के लिए **मोटा** ये सब बात करते हैं। मैं कहता ही नहीं ऐसी बात। कोई भी दिन। किन्तु जहाँ खुला दिल हो एवं जिज्ञासा की भावना हो, सत्संग की भावना हो, वहाँ हमेशा खुला होना ऐसा गुरुमहाराज का हुक्म है। इससे दूसरा कुछ पूछो।

दीक्षा जरूरी नहीं

जिज्ञासु : मैंने पढ़ा है कि **जीव** अनेक मलरूपी आवरणों के कारण संसार में रमण करता है और क्लेश अनुभव करता है। और मल पक जाने से गुरुस्वरूप भगवान अपनी अनुग्रहशक्ति द्वारा उसके मलरूपी आवरणों को दूर कर देते हैं। इस अनुग्रहशक्ति को ही दीक्षा कहा जाता हैं। अपना मल दूर करने का सामर्थ्य **जीव** में नहीं है।

मल पक गया कब कह सकते हैं ?

जिज्ञासु : दीक्षा के विषय में आपका क्या मत है ? क्या दीक्षा जरूरी है ?

श्रीमोटा : दीक्षा बिलकुल जरूरी नहीं है। आपको खुद को जिज्ञासा जागनी चाहिए। क्योंकि इस काल में ऐसे चेतनयुक्त सद्गुरु

मिलना दुर्लभ है। मुझे संभव लगता नहीं। ये जितने-जितने गिने जाते हैं कि सत्य सांईबाबा या वे आचार्य, अरे! भगवान रजनीशजी ऐसे सबको अनेक लोग अनुभवी कहते हैं, किन्तु मुझे नहीं दिखता। मेरे से कहा नहीं जा सकता। मैं तो छोटा गिनाऊँ, किन्तु नहीं गिन सकते। क्योंकि उसे कुछ जरूरत नहीं होती।

भगवान कृष्ण ने हमारे देश में जन्म लिया। उसने ऐसे चमत्कार कर दिखाये नहीं। चमत्कार करने की क्या जरूर ? स्वयं की हस्ती स्वयं की mere existance on this world वह चमत्कार है। वह बहुत बड़ी बात है। ऐसे पुरुष का इस जमीन पर हमारी साथ होना, रहना, उसके जैसा दूसरा कोई बड़ा चमत्कार हैं ? वह हमारे दिल में सद्भाव जागा हो, भक्ति जागी हो, तो ऐसे के साथ हमारे सहवास से हमारा बहुत-बहुत उठाव हो जाता है। आध्यात्मिक पंथ में। तब उसकी (दीक्षा की) कुछ जरूरत नहीं है।

श्रीबालयोगी महाराज ने कराया हुआ अनुभव

तो कि आपने किये थे न। मुझे तो खिंच कर ले गए थे। मूढ़ जैसा। मैंने कुछ (गुरु) किए नहीं। एक तो मुझे जबरदस्ती से पकड़कर ले गए थे। और तो भी मैं तो कुछ जाता नहीं। किन्तु एक अनुभव ऐसा करा दिया, चौबीसों घंटे वे (पू. बालयोगी महाराज) जागते रहते, ऊँघते ही नहीं। बिलकुल। और ओ मस्ती करें... ओ मस्ती करे। बंदर की तरह कूदाकूद करते। मुझे समझ आती नहीं कि ये क्या..... तुफान करते हैं ? फिर उसने मुझे साहब जो खिलाया। चार दिन रहा। तो चार दिन का मुझे होश नहीं। अन्यथा तो मैं रहता नहीं। एक दिन की रज़ा लेकर आया था। वह किसी भी कारण से मैं रहता नहीं। ऐसी discipline में हमारा पालन-पोषन...

कि आधे-आधे घंटे में, पौने-पौने घंटे में थालियाँ आती। किसी-किसी समय चाँदी की थालियाँ आती। और इतने सारे मिष्टान्न और खा जाओ बच्चा। बच्चा खा जाओ। यहाँ (गले) तक तो आ गया हो। महाराज, अब तो नहीं खा सकते। अब मेरे से नहीं खाया जाएगा। नहीं, बच्चा खा जाओ। वह कम से कम अत्युक्ति किए बिना कहूँ कि बारह शेर, तेरह शेर खा सका होगा मेरे से। और अंत में मिर्च की खिचड़ी आई। मिर्च की खिचड़ी। अच्छा खा जाओ। बापजी, यह तो खा सके ऐसा ही नहीं। जीभ पर... जीभ पर लाय उठती है। बच्चा खा जाओ। फिर हम तो खा गये। मिर्च की खिचड़ी खा गया। फिर उस रात तो मुझे कुछ विचार

आये नहीं। गुरुमहाराज के साथ फिरते रहा। मैं भी ऊँघूँ नहीं। उसके साथ फिरा करता। वह भी दौड़ लगाये तो मैं भी दौड़ लगाता। वह भी छलाँग लगाये... उस साबरमती के पानी में यों से यों गिरते और हाथी जैसे करे वैसा तुफान करते। तो मैं भी उनके पीछे पड़ता।

श्रीबालयोगी महाराज के पास से रज़ा ली।

दूसरे दिन भी ऐसा ही चला। खाने का। चार दिन तक चला, उसके बाद मुझे होश आया। अरे! इतने सारे दिन मैं रहा यहाँ आगे। अरर! चलो तब। मैंने रज़ा माँगी। मैंने कहा 'मैं तो एक ही दिन की रज़ा लेकर आया हूँ' प्रभु, यह तो भयंकर हमारा दोष हुआ। ऐसा हो ही नहीं मेरे द्वारा कभी कोई काल में। यह तो मैंने कुछ शराब पी या क्या?' समय का मुझे होश साहब ना रहा। तो कहा 'कल जाना,' मैंने कहा, मुझे आप रज़ा दो।' कहा, कल जाना... कल जाना। इससे फिर १ दिन ज्यादा रहा। पाँच दिन रहा।

शरीररूपी पुरुष हो या स्त्री हो उसका कोई विरोध नहीं। किन्तु ऐसे के पास से यदि दीक्षा मिले, वह बड़ी बात। वह यदि हमें दे अपने आप दे तो तो बहुत उत्तम और मानो कि हमने ली तो भी उत्तम है। क्योंकि वह तो जीताजागता अंगार है। अग्नि है, मैं उसे अग्निस्वरूप, कहता हूँ। वह पुरुष है सही या स्त्रीधारी हैं, किन्तु अभी दिखता है, उसका शरीर सब हमारे आपके जैसा। उसमें कोई फर्क नहीं है। किन्तु प्रत्यक्ष अग्नि स्वरूप है वह। उसके संपर्क में जितने हम आएँ मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् से (शरीर से आए वह नहीं चलेगा)। हमारे मनादिकरण द्वारा उसका चिंतवन हमारे में चला करे। जितना विशेष चला करे, उतना हमारा उद्धार सविशेषरूप से। हमें मुश्किल वह है, ऐसे अनुभवी पुरुष को हम कैसे परखें?

अनुभवियों को पहचानने की मापपट्टी समाज के पास नहीं है

समाज के पास कोई थरमामीटर नहीं है कि ऐसे को माप कर कह सके। एक ने कहा। दूसरे ने कहा। भेड़चाल जैसा है। चालू है। कि ये तो बहुत बड़े महात्मा हैं। बहुत बड़े महात्मा। किन्तु सही रीति से ऐसा होता नहीं कुछ। अनुभवी तो बहुत ही कम से कम हैं। उसे microscopic creative minority ऐसा यदि कहूँ तो मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैं अधिक अतिशयोक्ति करता हूँ। उससे थोड़े ज्यादा कदाचित् होंगे। किन्तु मेरे हिसाब से और अनुभव से वह तो microscopic creative minority आते है। और यह ज्यों का त्यों नहीं कहता हूँ।

हिमालय में अनुभवी पुरुषों की खोज में

१९३४ की साल में मैं ऐसे पुरुषों की खोज में ही गया था। गुरु थे इसलिए तो। और उसके लिए मेरे मन में बहुत सद्‌भाव कि मेरे गुरु बहुत समर्थ हैं, और मुझे स्वयं को अनुभव में भी आया था। इससे मुझे कोई गुरु की खोज करने जाना न था। ऐसे अनुभवी पुरुष हिमालय में बहुत हैं ऐसा सुना था। वह इस बात कितनी सच्ची है, इसीलिए ही मैं गया था। यात्रा-बात्रा करने गया न था। इसके लिए ही गया था। एक और दो तीन। उसके सिवा मुझे कोई ज्यादा मिले नहीं। मैं तो कहूँ कि तेरा भाग्य नहीं। तेरे भाग्य में थे, इतने मिलनेवाले थे। वह तो तेरे प्रारब्ध में था, वह तुझे मिला। उस सब में मानता नहीं हूँ।

प्रारब्ध **जीव**दशा में ही है। **जीव**दशा में हैं, वहाँ तक स्थल, काल, संजोग हैं सब। अनुभव होने के बाद, है ही नहीं वह। इतना सारा चौकस मुझे लग गया है। किन्तु अब उसे मेरे से साबित नहीं हो सकता। कि ऐसा होना चाहिए कि हमें साबित कर देना चाहिए कि जिससे जगत के लोगों को विश्वास हो कि यह बात सही है।

जैसे मैंने स्मरण पर लिखा है। पाँच तत्त्व और ये सब जिसे कोई अस्वीकार नहीं कर सके। ऐसा दूसरा किसी ने कहा नहीं है अब तक। किसी भी जगह पर। तब ऐसा इसके लिए मेरा चिंत्वन चालू है सही। उस विषय का कि अनुभवी पुरुषों को खोज सकते हैं। जब भगवान की कृपा हो और मिले तब सही। उसके बारे में मुझे कोई हर्ष नहीं कि ऐसा कुछ नहीं है। जब मिलना होगा तब मिलेगा। हमें अपना काम करना। तीन ही आदमी मुझे मिले ऐसे देखें।

अनुभवी के शरीर का वर्तन को नहीं देखना

अगर उनके शरीर के वर्तन के सामने देखा तो भूले पड़ेंगे। मर गये। तो grip ही नहीं आये। आपमें। किन्तु आप मिट्टी के खोखे ही देखते हो। उसके मनादिकरण और आंतरिक भाव को देखने की आपकी ताकत नहीं है। वैसा महात्मा ने कहा मुझे, अरे! बेटा, तेरे पर मुझे बहुत प्रीति है। इससे मैं तुझे कहता हूँ कि जहाँ जाओ संसार में भी। ये खोखे को मत देखो। खोखे को देखना नहीं तुझे और अनुभवी के तो खास। शरीर से चाहे वैसा करते हो। तो उसके प्रति लक्ष नहीं देना या लक्ष देना हो तो वह भी ज्ञान ही है। वह भी ज्ञान ही है। किन्तु तेरी बुद्धि भक्तियुक्त होगी तो वह समझ में आएगा। अन्यथा तुझे वह समझ में नहीं आएगा। किन्तु संसारव्यवहार की दृष्टि से चाहे वैसा आड़ा करे। वह तो वह ज्ञान ही है

वह। वह किस तरह माने हमारी बुद्धि ? वह भक्ति जागे तो ही, तो समझ में आये। उसके पीछे का रहस्य समझ में आये। सब समझ में आये यानी कि खोखे को तुझे नहीं देखना। शरीर को नहीं देखना। अंदर की बात देखना। मैंने कहा, महाराज, अंदर का किस तरह से दिखे मुझे ? वह कला कैसे दिखे ? तो वह कला भले तुझे न दिखे। निमित्त जागता है तो दिखती है सही। निमित्त जागता है तो अनुभवी को दिखे बिना रहता नहीं। एक बात।

अनुभवी की अंदर की बात कैसे देखें ?

और दूसरा वह जो बोले तब उसमें किसी वाक्य ऐसा निकल जाता है कि जो समझदार, विवेचक होता है, वह पकड़ लेता है और वह यह कि वाक्य सामान्य आदमी नहीं बोल सके। सामान्य मुँह में से यह बात कभी नहीं निकल सकती। उस पर से कयास आ सकता है। आप पा या आधा घंटा बैठो तो कोई बात ऐसी निकले, ऐसा कुछ बोल दे उस पर से आपको पता लग जाएगा। मैं तो बोलता नहीं जान बुझकर। गुरुमहाराज का मुझे हुक्म है कि हमें गुप्त रहना। मूर्ख में भी गिनती में होना। बुद्धु में भी गिनती में होना। ऐसी बिलकुल, बिलकुल, निम्न कोटि में गिनती में होना। किन्तु खुला नहीं होना, भगवान खुला नहीं है। इसलिए हम खुला हो नहीं सकते बिना निमित्त। कोई ऐसा कारण आ गया तो खुले हो सकते हैं।

आप जैसे आये आज मैंने स्वयं अपनेआप बुलाया। क्योंकि मेरा गला चलता नहीं अब। और भविष्य में मेरे से बोला जाय या न बोला जाय। इसलिए पेट भरकर सत्संग कर लूँ। भट्ट साहब (श्री अनुपरामभाई भट्ट) साथ इनको (श्री इन्दुकुमार देसाई) कहा था। रमेशभाई को कहा था साहब को कहना जरूर आये।

श्री धूनीवाले दादा के पास दीक्षा

इससे आज सद्गुरु हमें करना सही, किन्तु अनुभवी है उसका तो हमारे पास कोई माप नहीं है। मुझे तो बलपूर्वक पकड़ कर ले गये थे। मैं कुछ सद्गुरु करने गया न था। सोमाकाका (श्रीमोटा के अनुज) ने उनको देखे थे सही। फिर धूनीवाले दादा के पास ले गये। वहाँ गुरु ने दीक्षा दी कि अभय, नम्रता, मौन और एकांत इसको पालना और भगवान का स्मरण करना।

देखो, इसमें बहुत खूबी है। अभय और नम्रता introvert बनाये और मौन और एकांत बहिर्मुखपन घटाता है।

इतना सारा रहस्यवाला यह है। दिया कि ये चार साधन जहाँ तक कोई भी साधक के जीवन में प्राप्त न हो, तहाँ तक आगे उसका विकास नहीं होगा। उसे बाँध कर रखते। जकड़कर रखते। क्योंकि भय अनेक प्रकार के हैं। कि समाज में आप इस तरह नहीं जा सकते। और कुछ इच्छानुसार बोल नहीं सकते। मैं तो दो-चार बार नग्न फिरा हूँ। समाज में। कीर्तन गीत गाते-गाते, नाचते-कूदते जाता। किसी की हिम्मत नहीं चले और भगवान का नाम तो चलता ही करता, रास्ते में जाते-आते।

पढ़ाते-पढ़ाते भी ध्यान

पढ़ाते भी मैंने ऐसा कार्यक्रम का प्रबंध किया था कि साहब मेरे पास चार क्लास। वे चार क्लास को अलग-अलग दूँ। एक पूरी किताब में से सब कठिन जोड़नी के शब्द निकालूँ। एक पूट्ठे पर लिख दूँ। चारों किताबों के। वह एक क्लास को दूँ कि ये सब लिखो आप। उसमें व्यस्त रहे। एक को मोनीटर को गणित जिसे आता हो, उसे कहूँ कि भई, पंद्रह हिसाब करो। आज आप सब मिलकर जिसे न आता हो उसे सिखाना। और तुझे न आता हो तो मुझे पूछना। एक को दूँ भूगोलशास्त्र का काम, नकशा लेकर। इस तरह क्लास अपने आप खुद काम किया करे। मुझे समय मिला करता। मैं मेरा काम किया करता। क्लास में भजन और ध्यान भी करता। ये सब करता। जब गरज लगती है, तब रास्ते मिलते हैं। मिलते हैं। अपना काम भी हुआ करे।

मेरे पर फरियाद हुई थी कि ये तो बैठा रहता है। कभी पढ़ाता नहीं। आये जाँच करने। तो साहब सब सही। हिसाब भी सही। डिक्टेशन सही। शब्दों सही। कविता सब मुँह से बोल गये। ये कहूँ बढ़िया से बढ़िया है, भई। मैंने कहा लिखो तब विझिट बुक में भई।

भगवान के मार्ग पर बुद्धि सतेज होती हैं।

इससे भगवान के मार्ग पर जैसे-जैसे जाते हैं, वैसे-वैसे क्या होता है? बुद्धि का विस्तार होता है। बुद्धि निराले प्रकार की होती है। हमारे जैसी बुद्धि रहती नहीं। अभी उदाहरण रूप से मैं हूँ। किन्तु किसी को ऐसा लगे नहीं कि **मोटा** की बुद्धि बहुत होशियारीवाली है। ऐसा किसी को लगे नहीं। और वे लोग लुच्चे होते हैं। वे कुछ लाभ उठाने देते ही नहीं आपको। उनको अनोखापन कोई काल में लगने ही नहीं देते। कोई काल में नहीं साहब।

ॐ का अर्थ

तब हमें सद्गुरु इस काल में तो अपने-आप मिल जाय तो अच्छी बात। वह अगर करने जाएं तो धोखा खा जाएं। उसकी अपेक्षा ॐ लेना चाहिए। ॐ का इतना सब रहस्य है साहब कि आगे तीन है। उसका अर्थ यह कि जो भी सब तीन हैं। अठारहवाँ ळ अध्याय (गीता का) आप देखो तो तीन है। उसके साथ जो निशानी ळ की है, किया है, वह चेतन का प्रतीक है। वह उसके साथ जुड़ा हुआ है और ऊपर (ँ- अर्धचंद्राकार) यों किया है। उसका अर्थ यह है कि वह चेतन कि उससे अलग है। तीन है, जो भी सब उसके साथ चेतन जुड़ा हुआ है। और ऊपर किया है (अर्धचंद्राकार) वह उससे अलग है। ऊपर शून्य किया है। शून्य है। पूरा चेतन का आपको वह ख्याल दे देता है। ॐ कार में। इससे कुछ नहीं तो हम ॐ कार सामने रखें। किन्तु साधना किया करें। साधना हमारी स्वयं किया करें तो होती है। और उसमें से ज्ञान प्रकट होता है हमें।

मा को धूनीवाले दादा के दर्शन करने ले गए।

मैं गया नहीं। मैं गया नहीं। क्योंकि मेरे पास पैसे नहीं थे। बहुत गरीब। एक बार मुझे हुआ कि मेरी मा को मेरे गुरुमहाराज के दर्शन करा दूँ। उसे तो कुछ गरज़ नहीं। किन्तु मेरे मन में ऐसा उगा। ले गया। तो वह तो कुछ खुश नहीं बेचारी। कहती। ऐसे हैं वे नग्न और ऐसे। ऐसे को तूने गुरु किया। तू भी मूर्ख और अक्ल बिना का। और सोमाकाका को ले गया था साथ में। उनको थोड़ा कुछ ख्याल सही। किन्तु बहुत ख्याल नहीं। इससे हमें गुरु करना वह पंचायत की बात है। क्योंकि उत्तम से उत्तम अधिकारी है या क्यों? वह निर्णय हम नहीं कर सकते। अपनेआप यदि मिल जाय ऐसे तो उत्तम। हमारा भाग्य कह सकते हैं। किन्तु उसकी अपेक्षा तो उत्तम हम स्वयं साधना में एकनिष्ठा से, उत्साह से, उद्यम से तनदिही से लगे रहें वह उत्तम है। वह अधिक उत्तम है। उसकी अपेक्षा उत्तम ऐसा कोई गुरु मिल गया हो तो वह अच्छी बात है। किन्तु आज चेतननिष्ठ ऐसा गुरु मिलना इस काल में दुर्लभ है।

आध्यात्मिक शिविर अर्थहीन है।

मैंने अभी ही मेरे लेख के दो बोल में लिखा है। भाई जानते हैं, सोमाकाका। इतने सारे बड़े-बड़े महात्मा शिविर का आयोजन करते हैं, वह तो हमारे देश के पैसे का व्यय है। मैं तो कहता हूँ। इससे किसी को ज्ञान प्राप्त नहीं होता। होते हैं वैसे के वैसे ही। और ज्ञानप्राप्ति के लिए तो एक-सी, एकटक, अखंड साधना होनी चाहिए। तब ही वह प्राप्त हो।

अन्यथा प्राप्त नहीं हो। ऐसे को प्राप्त नहीं हो कभी। कि ये सब ऐसे ही निकल पड़े हैं। ऐसा भी लिखा हुआ है। यद्यपि इन सबको कहने के लिए मैं बहुत छोटा आदमी। ऐसा भी लिखा है मैंने। किन्तु मैंने बहुत स्पष्ट लिखा है कि यह पैसे खर्च करने की रीति है। दूसरा कुछ ही नहीं। बाकी के लोग अमन-चैन में घूमा करते। होटेल में चाय पीने जाते और फलाने जाते।

भक्तिमार्ग श्रेष्ठ, उसमें से ज्ञान भी पैदा हो।

इससे कहा गुरु करना, किन्तु गुरु करना तो ज्ञाननिष्ठ, ऐसे अनुभवी हो तो करना। तो वह अनुभवी है या नहीं उसका थरमामीटर हमारे पास नहीं है। हमारे पास है नहीं। इससे हमें स्वयं कोई मार्ग ग्रहण करना।

इस काल में मुझे तो भक्तिमार्ग बहुत ही सरल और श्रेष्ठ लगता है और भक्ति में से ज्ञान पैदा हुए बिना रहता नहीं। मैं मेरा उदाहरण आपको दूँ कि मैं कोई भी शास्त्र पढ़ा नहीं हूँ। कोई हिमालय की गुफा में से आकर बात करता हो तो उसकी साबिती नहीं मिल सके। मेरी तो आपको साबिती मिल सके ऐसा है। भक्ति की है, मस्ती से। नड़ियाद में नाचते-नाचते, घूमते-घूमते भजन गाते-गाते फिरा हूँ। हरिस्मरण किया है। और गांधी आश्रम में (साबरमती हरिजन आश्रम में) भी यह सब चला करता था।

भगवान योग्य आदमी को भेज ही देता है।

गीता कहती है कि मेरे भक्त को मैं ज्ञानयोग देती हूँ। इससे उसकी भक्ति पूरी हो जाय तो ज्ञानयोग अपनेआप आये ही। इससे ज्ञानयोग उसे मिले ही। अलग उसे प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं। भक्तियोग पूरा होते उसे ज्ञानयोग मिलता है। इससे मेरी अपनी खुद की कोई सलाह ले तो मैं तो कहूँ कि स्वयं खुद प्रयत्न करो। और प्रयत्न करने से हमारा अभ्यास उसमें ही होता जाएगा। तब भगवान कृपा करके योग्य आदमी को हमें भेज देगा। हम चला करें। जहाँ पथ पर ठीक आ गये और आवश्यकता हुई तो भगवान योग्य आदमी हमें भेज देंगे। उसके विषय में मेरे मन में शंका नहीं है। स्वयं प्रयत्न किया करो। और गुरु की चिंता-फिंता छोड़ दो। योग्य काल पर भगवान कृपा करके उसे भेजेंगे। और अनेक के किस्से ऐसे मैंने देखे हैं। मिले हैं पीछे से।

जिज्ञासु : अनुभवी है, वह दीक्षा अपने आप देता है, वह किस तरह अपने आप दे ?

श्रीमोटा : वह तो उसे ऐसी प्रेरणा हो न !

जिज्ञासु : उस अनुभवी को ?

श्रीमोटा : हाँ। अपने आप दे दे।

मल पके हुए कब कह सकते हैं ?

जिज्ञासु : मोटा, प्रश्न ऐसा था न कि दीक्षा वही एक अनुग्रह शक्ति है गुरु की। ऐसा पढ़ने में आया था। और जीव में जो अनेक मल हो, वे पक जाते हैं, तब फिर जैसे मोतियाबिन्द पक जाता है, तब डॉक्टर निकाल देता है। जहाँ तक मल पक नहीं जाते तहाँ तक गुरु वे दूर नहीं कर सकते। क्योंकि **जीव** स्वयं उन मल को दूर करने में असमर्थ है। उस बाबत पूछता था। मल पक गए कब कह सकते हैं ?

श्रीमोटा : मल, विक्षेप और आवरण ये तीन जाय तो ज्ञान हो। तब वे जाय किस तरह ? कि मल, विक्षेप और आवरण जिस क्षेत्र के हैं, उस क्षेत्र से ऊर्ध्व गति में सतत conscious यदि हम रहा करें तो वे नरम पड़ जाते हैं। अपनेआप और वह हमारा चला ही करता हो, उस ऊर्ध्वगमन की हमारी परिस्थिति चला ही करती हो। वह तो सतत । इससे धीरे-धीरे यह नहींवत् हो जाय।

गुरु मल मिटाते नहीं किन्तु ठीक सीधा करते हैं।

अब कोई ऐसा कहे कि ये गुरु मल मिटाते हैं। उसमें मैं मानता नहीं। गुरु की *grace* है। गुरु हमें मदद करते हैं। वह बात भी सत्य। किन्तु गुरु सब कर दे तो गुरु हमें लूला-लंगडा नहीं बना दे। गुरु हमें ठीक सीधा, खमीरवाला, खुमारीवाला बनाना चाहते हैं। गुरु सब नहीं कर दे। वह बात या मान्यता गलत है। गुरु हमें ठीक सीधा कर देते हैं। हमें प्रेरणा देते हैं। हिम्मत देते हैं। धैर्य दे। यह सब करते सही। गुरु हमारी पीठ थपकाते हैं। ढीले हुए हों, उस समय पर हमें फिर सज्ज करते हैं। यह सब सही है। यह बिलकुल अत्युक्ति बिना की बात। किन्तु वे मल, विक्षेप और आवरण वे सब धो डालते हैं, वह ठीक नहीं है। वे तो हमें ही धोने पड़ेंगे। और वे भक्ति सिवा या ज्ञान सिवा जाते ही नहीं। वह एक और एक दो जैसी बात। या तो भक्ति संपूर्ण हो। भगवान में संपूर्ण हो तो कब हो ? सतत हमारे मनादिकरण में उसकी ही सभानता awareness रहे और ज्ञान का परिणाम भी वही। Awareness हमारे मन में रहा करे।

बहुत लोग कहते हैं कि **मोटा** मैं आपको बहुत प्यार करता हूँ। बिलकुल गप्प। मन में तो हो नहीं। उनके मन, बुद्धि, चित्त में तो हो ही नहीं। फिर भी बोला करते। किसी को कहूँ। सबको न कहूँ। किन्तु

किसी को कह दूँ सही।

भक्ति की पराकाष्ठा पर मल, विक्षेप अपने आप जाय

इससे हम ये मल, विक्षेप और आवरण वे जहाँ तक भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचे नहीं हैं, तहाँ तक नहीं जाते। गुरु भी नहीं कर सकते। और ज्ञान की ऐसी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पराकाष्ठा पर पहुँचे तब वे जाय। और उसे जाने का प्रयत्न न करना चाहिए। आदमियों उसे मल हो। जो हो उसे निकालने का जो प्रयत्न करते हैं, वह मुझे उचित रास्ता लगता नहीं सच्चा। उसकी अपेक्षा भक्ति का रास्ता सच्चा है। भक्ति में जितना गहरे से गहरा ज़ा सके इतना जाना। भक्ति में जितना अधिक से अधिक रस ले सके उतना लेना। भक्ति में जितनी अधिक से अधिक मेहनत हो वह करनी। वह अखंड कर दो। फिर अपने—आप खिसक जाय। जैसे चोर आये हो और फिर सब जाग जाएं और लाईट हो, इससे भाग जाय वैसे ये मल, विक्षेप और आवरण अपने आप हट जाएँगे। भक्ति और ज्ञान का सर्वोच्चपन हमारे जीवन में जाग जाना चाहिए। तब ही जाय। बाकी मेरी समझ ऐसी है कि गुरु भी वह नहीं कर सकते। गुरु भी ऐसे होते हैं सही। गुरु कहे सही। वैसे वे सचमुच गुरु कह सके कि जो काम हमें करना है, वह हमें ही करना चाहिए। वह वहाँ आपको इशारा दे, मदद करे, प्रेरणा दे, समझाये, वह सब करे सही। किन्तु वह काम आपको ही करना। वह नहीं कर दे, ये मेरी समझ इस प्रकार की है।

जिज्ञासु : अब दूसरा प्रश्न ऐसा है कि आपने लिखा 'निमित्त' में कि जहाँ-जहाँ निमित्त होता है, वहाँ-वहाँ अनुभवी सतत हाज़िर होता है। उस संबंध में आया हुआ जीवरूपी निमित्त जहाँ हो वहाँ वह उपस्थित ही हो या निमित्त जब याद करे, हृदय से पोकार करे तब वह उपस्थित होता है ?

अनुभवी के निमित्त के दो प्रकार

श्रीमोटा : एक तो निमित्त दो प्रकार के। एक तो अनुभवी के स्वयं के होते हैं, अनेक जन्मों के। उसके साथ बिताये होते हैं। इससे काल भले उसे ना हो, किन्तु उससे करके निमित्त नहीं है ऐसा नहीं अनुभवी को। वे अनेक ठिकाने प्रसरित हुए हैं। एक ठिकाने नहीं। एक ही समय में कितने ही निमित्त के साथ वह संबंध में है।

और दूसरे प्रकार से अलग-अलग निमित्तों, आदमियों, **जीवों**, संबंध में आये हुए हैं। और वे भी निमित्त हैं उसे। वे निमित्त हैं उसे। वे लोग भी प्रेमभक्तिभाव से इसे याद करते हो तब। एक तो उसे स्वयं के

निमित्त और दूसरे इस प्रकार संबंध में, सोबत में आये हुए प्रेमभक्तिपूर्वक जो याद करते हैं। व्यर्थ-व्यर्थ नहीं। उचक्का नहीं। किन्तु प्रेमभक्तिपूर्वक याद करें, तब उनके साथ वह होता है।

अनुभवी के निमित्त हो उसके लक्षण कौन से ?

तब वह दिखे नहीं। तब कोई परिणाम तो चाहिए। कुछ लक्षण बिना कैसे मान सके ? उस तरह हमें अचानक उत्साह आये या जो वस्तु करने की हो उसका हल आ जाय। उसमें कुछ सरलता मिल जाय। ऐसा कुछ न कुछ हुआ ही करे। प्रत्येक को अलग-अलग रीति से। किन्तु वे लोग (निमित्तों) जानते होते नहीं कि उसकी (अनुभवी की) हाज़री का यह परिणाम है। वे संसारी लोग जानते नहीं। उस प्रकार यह जो अनुभवी है, उसके जो निमित्त हैं, उसके निमित्त के समय पर वह भी वहाँ हाज़िर होता है, और एकसाथ अनेक ठिकाने। तो लोग कहे यह तो मान सके ऐसी बात नहीं है। व्यर्थ सब निकल पड़े हैं। गप्प लगाते हैं। यह सूर्य है न ? उसका प्रकाश कितने ठिकाने ?

अनुभवी कहीं भी हाज़िर हो सके

जिज्ञासु : सर्वत्र।

श्रीमोटा : उसे मानना पड़े या नहीं ? उस तरह अनुभवी का होता है। उसकी बुद्धि expand होती है। उसकी बुद्धि को प्रज्ञा कही हुई है। तब उसकी liability इतनी सारी बड़ी कि कहीं भी हाज़िर हो सकता है। वह तो अनुभव का विषय है। आप होकर देखो। और बाद अनुभव करो। उसके सिवा आपको पता नहीं लगेगा। हमारा कहना गप्प मानना हो तो गप्प मानो। हमें उसका कोई हरज नहीं है, किसी प्रकार का। किन्तु हमारे मन से यह बात सच है। और आप बनो तो आपको भी सच समझ में आये। इससे अनुभवी के जो निमित्त होते हैं, वहाँ भी वह होता है।

अनुभवी और संसारी के निमित्त के अनुभवों में फर्क

किन्तु वहाँ संसारी में संसार के आजकल के उसके संबंध में आये हुए आदमियों प्रेमभक्ति-पूर्वक उसे जो भजे या याद करे और वे उसके संबंध में आये हुए आदमियों हैं, वे दो के बीच में फर्क पड़ता है। एक को जो होता है वैसा उस दूसरे को नहीं होता। दूसरे को उसके जैसा नहीं होता हंअ...। होता है तो सही किन्तु उसे जो होता है, वह कोई अलग प्रकार का उसे जो होता है, वह सांसारिक, व्यावहारिक प्रकार का नहीं, किन्तु ईश्वर, चेतन के संबंध का उसका। स्थिति जैसे अधिक से अधिक हो। विकास हो, उस संबंध का कर्म उसमें हो। उस प्रकार की प्रेरणा उस

आदमी को मिले। उस अनुभवी की तरफ से। इतना दो जन बीच का फर्क है।

लय पाये हुए मुक्तात्माओं को प्रेमभक्तिपूर्वक याद करते हाज़िर होते हैं

जिज्ञासु : आपने कहा कि जीवनमुक्तों, मुक्तात्माओं microscopic minority में हो। बहुत चेतन साथ एक हुए होते हैं। इससे सर्वत्र होते हैं। अब वह व्यक्ति जैसे मैंने कहा कि घटाकाश टूट जाय इससे आकाश महाकाश में लीन हो जाता है। ऐसा बनता होता है। फिर भी उसका विशिष्ट व्यक्तित्व होता है, ऐसा आपके कथन से फलित होता है वह logically बैठता नहीं है।

श्रीमोटा : आकाश में सूर्य एक ही है। उसे प्रकाश है। एक ही सूर्य नहीं है। अनेक सूर्य हैं। यह तो बुद्धि में उतरे ऐसी बात है। उस प्रकार ऐसे जो महात्मा पुरुष हैं, वे विलीन हो गये हुए हैं। बाद में उनका अस्तित्व चला गया है ऐसा नहीं है। जो-जो भक्त उन्हें प्रेमभक्तिपूर्वक याद करते हैं, तब हज़िर होते हैं। वहाँ होते हुए भी वहाँ की स्थिति कुछ बदलती नहीं। फिर भी पृथ्वी पर हाज़िर हैं। रामकृष्ण परमहंस का उदाहरण लें कि उनका शरीर गुजर जाने के बाद अमुक को उसके दर्शन हुए हैं। रमण महर्षि का भी ऐसा ही है।

जिज्ञासु : वह तर्कसंगत हम किस तरह समझा सकते हैं? मुक्तात्मा साकार हो जाय वह तर्कसंगत है।

श्रीमोटा : वह कहूँ आपको। कि जब हमारा विचार है। वह विचार भावना की स्थिति में आये और भावना एकाकार हो जाय और अखंड हो। और उसमें ही व्यस्त हो, तब भाव स्वयं ही साकार हो जाता है। उस प्रकार सद्गुरु है। जब उसका मनन, चिंत्वन चला करता है, तब साकार हो जाता है। उसकी किसी को गरज पड़ती है, तब संसारी को किसी को याद करते हैं। पाँचसौ रुपये चाहिए हमें तो हम मित्र हो सचमुच। फिर उसे जाकर कहें तो हमारा काम पार हो जाता है। उस प्रकार इस संसार-व्यवहार में हम रहते हैं और हमें ऐसे महापुरुष के साथ संबंध है। दिल-दिल का संबंध है उसके साथ का।

हृदय का पुकार

अब जब हम उसे पुकार करते हैं, उसे याद करते हैं, हमारे मनादिकरण में उसके सिवा दूसरा किसी का अस्तित्व नहीं है। वह अकेला ही हमारे मनादिकरण में खेलता होता है। और हमें जो कहना हो,

वह कहते हैं, उस समय में वह मनादिकरण में भावना से खेलता हो तो वह आत्मनिष्ठ पुरुष हमारे साथ में साकार रूप से भी आता है, साकाररूप न होने पर भी आपके हृदय में उसकी सब प्रेरणारूप सब आपकी जो मुश्किल हो उनका सब उत्तर मिल जाता है अंदर। और अमुक बाबत में साकार भी होता है।

क्रोस पर से जिसस प्रकट हुए किन्तु जलाये हुए भी प्रकट होते हैं

जिज्ञासु : ये जिसस आये ऐसा जो कहते हैं तो उस तरह ?

श्रीमोटा : जिसस ?

जिज्ञासु : जिसस क्राईस्ट उनका crucification हो गया। और उसके बाद फिर प्रकट होते हैं और घनिष्ठ स्वरूप से ही दर्शन देते हैं। किसे देते हैं वह मैं भूल गया।

श्रीमोटा : हाँ है। हाँ हो। वह हो सकता है। जलाये हुए हो तो भी हो सकता है। उनको तो क्रोस में चढाये थे, जीते थे। मर न गये थे कुछ। किन्तु वह तो कुछ भी हो। किन्तु जला दिये हो तो भी वे जीते हो सकते हैं। क्योंकि उसे Body है, वह महत्त्व है नहीं उसे। वह स्वयं के भाव के कारण Body तो है।

भेद-अभेद

जिज्ञासु : इस पर से एक सिद्धांत ऐसा निकल जाता है कि भेद भी है और अभेद भी है। ऐसा होता है।

श्रीमोटा : वह इस लिए तो हमारे यहाँ सब इतने सब संप्रदाय निकले हैं। केवल अभेद नहीं है। भेद है। अभेद भी है और भेद भी है। भेद में मज़ा होती है। दो दोस्त हों तो उसके साथ मज़ा करते, हँसी-मज़ाक की बातें करते, गाली दें और कोई भी फिर दो दोस्त सचमुच हो तो साहब उसकी मज़ा कोई निराली है। उस तरह द्वैत की मज़ा निराली है। इसके साथ तुलना कर सकते ही नहीं। बिलकुल तुलना नहीं कर सकते। मित्र के साथ जो तुलना की। वह तो तुलना कर ही नहीं सकते। किन्तु उसके साथ का जो द्वैत है। वह तो कोई अद्वितीय ऐसे प्रकार का है कि अनुभव के बिना वह समझ में नहीं आये। बहुत ही आह्लादक और अपरम्पार आनंद का तो कोई शुमार नहीं उसके आगे। निरा उछलता। और फिर भी वह हमारे पास से जाता ना रहे। उस तरह..... रहती है भावना। तेरे साथ ही हूँ। ऐसा होता है। मुझे ऐसे अनुभव हुए हैं।

जिज्ञासु : यानी द्वैताद्वेत की.....अब कर्म के अनुसार मनुष्य

सुखीदु:खी होता है, ऐसा शास्त्रों में मत बताया है। किन्तु श्रीअरविंद ऐसा नहीं मानते हैं। वह उनके मत से तो अच्छे कर्मों से मनुष्य उन्नत होता है और बुरे कर्मों से अउन्नत होता है। अच्छे कर्मों के कारण मनुष्य को समृद्धि मिलती है, आदि होता है या तो दुनिया में सुखी होता है, ऐसा नहीं है और बुरे कर्मो के कारण बुरा जन्म मिलता है, ऐसा नहीं है .....
उपनिषद में भी है। इससे पुण्य कर्म से पुण्य यानी पवित्र होता है और बुरे कर्मों से वह अउन्नत होता है। ऐसा भार देकर श्रीअरविंद इस प्रकार बात करते हैं, ऐसा मुझे लगता है। आपकी क्या मान्यता है ?

श्रीमोटा : .....

.....

.....

क्योंकि कर्म एक किया। अच्छा या बुरा। वह कर्म तो स्थूल है न ? किन्तु उसके साथ चिमटे हैं मनादिकरण। मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम्। वे जिस प्रकार सोचते हैं, उस समय अगर उत्तम से उत्तम रीति से सोचते हो और बुरे प्रकार का कर्म करता हो, वह आदमी बिलकुल शापित प्रकार का कर्म करता हो, बिलकुल शापित, तब उसके मनादिकरण यदि उत्तम से उत्तम प्रकार का मनन-चिंतवन करना हो तो उसका कोई..... परिणाम नहीं है, उसे बाधा डालता.....नहीं उसे। इससे कर्म मनादिकरण के साथ चिमटे हैं। इससे कर्म करते समय आपके मनादिकरण किस प्रकार का सोचते हैं, उसके ऊपर आधार है। .....

.....

भक्त हो। और कर्म संजोग से उसे पकता न हो उसे। कर्म से, संजोग से लकड़ी चोरने गया था न ? मेहमान घर पर आये। लकड़ी थी नहीं। रसोई करनी। सबको नहलाना। तो लकड़ी चाहिए। तो चोरी करके ले आया। तब उसके मन में चोरी का कुछ भाव न था। उसका भाव तो बहुत उत्तम प्रकार का था। तब उसे पाप नहीं लगता। (संत कबीरजी के पुत्र कमाल का प्रसंग।) उसे पाप नहीं कह सकते। मनादिकरण किसी भी.....

आध्यात्मिक प्रयोग

जिज्ञासु : उसका अर्थ ऐसा हुआ कि motive देखना चाहिए।

श्रीमोटा : Motive किन्तु कौन देखे ?

जिज्ञासु : यानी.....

श्रीमोटा : वह खुद समझे तब। बुरा से बुरा कर्म करता हो। तब उसकी भावना उत्तम से उत्तम प्रकार की हो, वह प्रयोगात्मकरूप से वह हमारे जीवन में बनना चाहिए। मेरे गुरुमहाराज ऐसे प्रयोग कराते। कि आप बिलकुल। बिलकुल ऐसी नकारात्मक दशा में हो, तब भी आपका मनादिकरण उत्तम से उत्तम प्रकार का है और तब आप भजन लिख सको तब आप तब सही। ऐसे प्रयोग कराते हमें। ज्यों का त्यों नहीं चले।

सूरत में नाड़ी १५० और उसके साक्षी

अभी सूरत में मेरी नाड़ी १५० थी। तब तीन भजन लिखे मैंने। साक्षी रखकर। खड़े रहो अबे। आज कोई यह जगतवाले मेरे बेटे मानेंगे नहीं कि १५० नाड़ी हो, तब कोई लिखता होगा कहते हैं ! तो ऐसा है।

निम्न में निम्न स्थिति में भी भाव (प्रेम) टूटता नहीं

तब यह जो भावना है और जिसे भाव कहते हैं, वह भाव कैसी भी प्रकृति की दशा में प्रकृति से पर है। अगर उसे भाव हुआ हो तो फिर प्रकृति की निम्न से निम्न गति में वह हो तो उसका भाव है, वह टूटता नहीं। फिर वह कायम ही। क्योंकि वह आदमी क्यों ऐसा ? ऐसे कर्मों में प्रेरित हुआ ? ऐसा हमें हो। तब बहुत लोग क्या कहते हैं कि वह तो प्रारब्ध-कर्म। वह नहीं चलेगा। मुझे ऐसी भी मान्यता नहीं। किसी संजोगों के कारण ऐसा बन गया। ऐसा बन गया है। किसी संजोगों के कारण तो उस समय उसकी सही परीक्षा होती है। वह उस समय चेतन में है या नहीं और वह प्रत्यक्ष ऐसा वर्तन से दिखाये तब सही। तहाँ तक नहीं।

आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रयोग जरूरी है

मेरे गुरुमहाराज ऐसा कहते थे कि ये सब अभी तो ये सब मंडलेश्वरों और साधु-संन्यासियों यों कहे कि इसमें experiment क्या ? वह नहीं चलेगा। इसमें भी प्रयोग है। प्रयोग से आपको साबित कर दिखाना पड़ेगा। इससे अन्य किसी को दिखाने आपको जाना नहीं है। आप स्वयं द्वारा प्रयोग से आप इस प्रकार के हो। चेतनानिष्ठ हो, वह आपको प्रयोग द्वारा साबित करना चाहिए।

तब उस बाबत बारे में किसी ने लक्ष दिया नहीं है हमारे हमारे में।

इसमें यह। किसी में। चिताये बिना। क्योंकि भाव है। वह भगवान का भाव सर्वोपरि है। वह प्रकृति से पर है। प्रकृति का उसे कोई बंधन नहीं है। तब वह फिर प्रयोगात्मक रूप से सिद्ध होना चाहिए न ? प्रयोगात्मकरूप से सिद्ध न हो, तहाँ तक किस तरह कहना ?

ये देखो न मेरे शरीर को कितने सारे दर्द हैं ? उसमें यह फिर जोड़ा हुआ है, water logging का। इतना त्रास होता है कि कहने में कसर नहीं कि होने दो। फिर भी मैं भजन लिखा करता हूँ। और वह भी भगवान की कृपा से कोई न कोई पैसे छपवाने के लिये देते हैं। मैं साहित्यकार नहीं हूँ। तुकबंदीकार हूँ। तुकबंदी लिखता हूँ। किन्तु मुझे मज़ा आती है। क्योंकि इतना सारा दर्द होने पर भी हम उसमें (भगवान में) मन हमारा रखकर सतत लिखते रहें तो हमें ऐसी समझ आती है कि नहीं वह अंदर की पूँजी है सही।

कोडाईकेनाल में तो वहाँ मुझे बहुत ऊँचाई और बहुत दमा। बहुत दमा। और दो किताब लिखी वहाँ। एक 'जीवनघडतर' और दूसरी का क्या नाम भई ?... दोनों को छपवाने के लिए पैसे भी मिल गये। किन्तु ज्यों का त्यों नहीं चलता। अनुभव आपका विरोधात्मक संजोगों में भी वह एक-सा टिका रहे तब बात सही। अन्यथा नहीं चलेगा।

जिज्ञासु : किन्तु संसारी को तो सुख-दु:ख है।

श्रीमोटा : उसको हो। उसे होने के।

जिज्ञासु : उसके परिणाम तो सही न ?

श्रीमोटा : उसे रहेंगे। उसके परिणाम आये उसके साथ उसे निसबत नहीं है। नि:स्पृही है।

पाप और पुण्य का समझौता

जिज्ञासु : मेरा प्रश्न ऐसा है कि पुण्य का परिणाम सुख और पाप का परिणाम दु:ख यह तो बात सच न ?

श्रीमोटा : वह पाप और पुण्य की जो बात करते हो, वह पाप-पुण्य मनादि में हैं। शरीर को कुछ नहीं उससे। मनादिकरण को यानी पाप मानो कि ऐसे किये हो अधिक तो हमारी वक्र बुद्धि हो। वक्र मन हो। यह सब मनादिकरण में उसकी वक्रता आये। बाकी नहीं। और रोग बगैरह भी हैं, वे भी मनादिकरण के कारण ही हैं। उसे कुछ दूसरे कारण से हैं ऐसा नहीं। इससे शरीर को कुछ हो, उदाहरणार्थ चोरी हुई कि जो आपके पाप के कारण हुई वह बात उचित नहीं है। वह संजोग है। स्थल, संजोग और काल।

जिज्ञासु : कोई दु:ख आ गया वह पाप के परिणाम से सही ?

श्रीमोटा : नहीं। पाप के परिणाम से नहीं मान सकते। उसके विषय में। जैसे सायन्स की दृष्टि से हम पृथक्करण करें वैसे पृथक्करण करना चाहिए कि सचमुच सही रीति से पाप कौनसा है ? और स्थल, संजोग और काल के कारण कौनसा ? महामारी हुई तो वह संजोगों के कारण से। उसमें आपका पाप कुछ नहीं। यह बुद्धि से मान सके ऐसा है। छुतैला रोग है। उसकी रीति से वह हुआ। इससे यह सब सोचना चाहिए। इससे जो कुछ हुआ, वह सब पाप के कारण हुआ है ऐसा निश्चित नहीं होता। ऐसा हमारे जीवन में होता नहीं।

जिज्ञासु : पुण्य के कारण समृद्धि हुई ऐसा बने ?

श्रीमोटा : नहीं। ऐसा भी नहीं है। वह भी बात सच नहीं है। स्वपरिश्रम किये बिना समृद्धि नहीं होती।

जिज्ञासु : तो कोई व्यक्ति Multi - Millioner के वहाँ जन्म लेता है, वह किस तरह ?

श्रीमोटा : उस व्यक्ति ने उसके घर जन्म लिया, उसे आप प्रारब्ध कहना हो तो कहो उसे। उसकी मेरी मना नहीं है।

जिज्ञासु : उसमें कोई कर्म का कारण सही ?

बच्चे अमुक के वहाँ जन्म लेते हैं उसका कारण क्या ?

श्रीमोटा : कर्म का कारण सही। कर्म के कारण की ना नहीं। कर्म का कारण सही, किन्तु उसमें मूल सिद्धांत देखें तो जो मा-बाप होते हैं और उनको जो बच्चे होते हैं, वे उनके साथ कोई संबंधवाले हैं। वे बच्चे हैं, जो होते हैं, और वे **जीव** वातावरण में हैं। वातावरण के बाहर नहीं है। वे वातावरण में **जीव** होते हैं और उस मा-बाप को उन लोगों के साथ आकर्षण है, वह जानते नहीं है। वह उसकी इच्छा है संतान होने की। संतान होने की इच्छा है वह पक्की बात। किन्तु अंतर से उनको वे जो अवकाश में **जीव** हैं ऐसे। वैसे लोगों के साथ संबंध हो जाता है। और वह संबंध फिर उनको खींच लाता है। सही बात तो ऐसी है।

इसमें पाप-पुण्य के कारण वह होता है ऐसा कुछ नहीं। किन्तु संबंध-मूल में सही। उस **जीव** के साथ। उसके कारण वे लोग जिसे संतान होने की तो किसी को मरजी हो। उसमें तो बेमत नहीं है। किन्तु उनका हम कहते हैं कि हमारा स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर। कि सूक्ष्म शरीर जो है, वह उन लोगों को आतुरतापूर्वक रटन करता है।

और स्वयं के होने से और स्वयं के हो गये हैं। वे स्वयं के होने से वे उनको आतुरतापूर्वक रटन करते हैं। उसके कारण से वे खींचकर आते हैं। मा के पेट में। ऐसा कारण होता हैं। सही कारण तो यह है। उसमें पाप-पुण्य का कोई कारण या बात नहीं है।

सोचने का महत्त्व - लीक छोड़ना

मैंने उस तरह सोचकर मैंने यह कहा है आपको। ज्यों का त्यों नहीं कहता मैं। सोच करके कहता हूँ, क्योंकि हमारे में कितनी सारी बात लीक से चलती हैं। केवल लीक की रीति से। अब नहीं चलेगी ज्ञान में। ज्ञान को तो नूतन कहा है। नूतन-नूतन होना चाहिए। तब उस तरह हमें सब सोचना चाहिए। आप तो पुरानी परंपरा अनुसार जो कुछ सोचो वह नहीं चलेगा इस जमाने में। और एक हमें तो समझना चाहिए कि इस परंपरा अनुसार सोचना उचित नहीं है। और हमें नया कुछ सूझे और कुछ सोचें वह भी तो rational होना चाहिए। हमारी बुद्धि स्वीकार कर सके ऐसा होना चाहिए। मेरा ऐसा मत सही। उस अनुसार ही मैं कहता हूँ। कोई अस्वीकार करे ऐसा नहीं। स्वीकार कर सके ऐसा।

प्रारब्ध कर्म और भोग

जिज्ञासु : अन्य की दृष्टि से ज्ञानी को प्रारब्ध का भोग है ? आपने जो कहा उसके अनुसार उनकी दृष्टि से तो प्रारब्ध और उसका भोग दोनों ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होते नहीं ऐसा कहते हैं। ज्ञानियों को भी प्रारब्ध अधिक बलशाली अवश्य फल देनेवाला है और भोग द्वारा नाश होता है। और पूर्व के संचित और क्रियमाण यथार्थ ज्ञानरूपी अग्नि द्वारा विनाश होता है। यह सर्वकथन अन्य की दृष्टि द्वारा है।

ब्रह्म और आत्म के एकपन का साक्षात्कार करके जो सर्वदा उस रूप में ही स्थिर हुए हैं, उनको तीनों संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कभी भी नहीं है, क्योंकि वे निर्गुण ब्रह्मस्वरूप में ही हैं। ऐसा शंकराचार्य के 'विवेकचूडामणि' का पूरा मत है। कहाँ तक कर्म का उपयोग है ?

श्रीमोटा : अब इतने तक आपको समझ आ गई। कर्म वहाँ तक सही। उसे अनुभव करने तक। उसमें शंका नहीं रही न ? चलो, वह रहा और अनुभव हुआ। तो उसे शरीर रहा कि नहीं ?

जिज्ञासु : नहीं। मैं **जीव**दशा के लिए बात करता था।

श्रीमोटा : जीवदशा को तो कर्म है, है, है।

जिज्ञासु : इससे वह आत्मानुसंधान के मार्ग पर गया, वहाँ जाते

–जाते एक ऐसा stage आता है कि जब वह कर्मउपासना जो कुछ करता हो, उसे छोड़ देने की अवस्था आती है। उसकी बात करता हूँ।

श्रीमोटा : आती है, आती है।

जिज्ञासु : How Far ?

अनुभवी (Master of all)

श्रीमोटा : वह आती है सही, किन्तु बाद में अपने—आप automatically हो जाती है। किन्तु आती है सही। उसे छोड़ देता है। इतना ही नहीं साहब, यह तो पहली बार बात करता हूँ कि अनुभवी पुरुष को master of all कहा है। उसे स्वामी कहा है। भूख, प्यास पर भी स्वामी। उसे ऐसे संजोग मिल जाते हैं। ८–१० दिन तक खाना बिना चलता। पानी सिवा, किन्तु साहब मेरा अनुभव है छ (६) दिन तक पानी बिलकुल मिला नहीं। तब भजन–कीर्तन में मस्त हो। टट्टी–पेशाब आदि से भी मुक्ति उसे। किन्तु हमेशा के लिए नहीं। उसे अनुभव हो जाय कि मैं इसका स्वामी, स्वामी हूँ, स्वामी हूँ। जैसे हमें घर है। घर के हम स्वामी हों तो उसे ताले लगा देते हैं न। जब चाहे तब खोलना हो तब खोलें। उस तरह उसे अनुभव होता है सही। साधना की उच्चत्तम कोटि में मुक्त रह सकते हैं ऐसा उसे अनुभव होता है।

जिज्ञासु : भगवद् गीता में स्थितप्रज्ञ शब्द का उपयोग किया है। कर्म करते–करते, स्थितप्रज्ञ अवस्था को ही वह मोक्ष अवस्था कहती है। वह स्पष्ट रूप से कहती है।

श्रीमोटा : ठीक।

Pole Jump में बाँस छूट जाय वैसे कर्म–उपासना छूट जाय

जिज्ञासु : इससे मुझे कुछ ऐसा स्फुरित हुआ था कि व्यक्ति pole jump करता है। वह pole लेकर दौड़ता है और फिर अमुक तक आता है। इससे फिर बाँस छोड़कर फिर कूद पड़ता है। कर्म और उपासना मेरी बुद्धि अनुसार अमुक तक उपयोगी होते होंगे।

श्रीमोटा : उसे छूट जाता है। उसके कोई कर्म फिर पहले के कर्म तो आत्मा के अनुभव के हैं। अब कोई ऐसा है नहीं उसे। उसे कर्म अनिवार्य नहीं है। किन्तु उसे कर्म हैं सही। उसे कर्म है। पलपल सक्रिय है। किन्तु निष्काम की भूमिका पर सकाम है। ब्रह्म भी। या आत्मा की बात करें तो भी वह स्थिति उसकी होती है। क्योंकि वह संपूर्ण निष्काम होते हुए भी वह काम करे या न करे सब समान ही है उसे।

जिज्ञासु : तो ऐसा सही ?

श्रीमोटा : अमुक पड़े रहते हैं साहब। अमुक। अमुक। ऐसे होते हैं। कर्म बिना वैसे ही पड़े रहते हैं। फिर भी महान ज्ञानी ऐसे होते हैं सही। मुझे याद हैं। एक प्रसंग। ये सब को भी समझ पड़ेगी।

डाकोर का मगरमच्छ-मुक्तात्मा

डाकोर (द्वारा, आणंद, गुजरात) में गोमती के किनारे बाजार में जाते एक कुँआ आता है। उसके पीछे एक आदमी पड़ा रहता। बिलकुल पागल ही सब कहते। बहुत समय तक। मेरे गुरुमहाराज कहते मगरमच्छ के पास ले जा। मेरे पास पैसे तो होते नहीं। मैं तो पैर पड़ा और कहा, हुक्म उठाने तैयार हूँ। मेरे पास पैसे नहीं हैं।

गुरुमहाराज : बिलकुल नहीं ?

श्रीमोटा : नहीं।

गुरुमहाराज : तो माँगकर ला।

श्रीमोटा : गरीब को साहब कोई नहीं देते।

गुरुमहाराज : तो इतनी सारी गरीब अवस्था ?

श्रीमोटा : मेरे घर आओ तो दिखाऊँ। मुफ्त आऊँ। आपके साथ। आप बैठो और मैं भी बैठूँ।

गुरुमहाराज : नहीं। पैसे चाहिए।

श्रीमोटा : पैसे मेरे पास नहीं है। आपके साथ आने की तैयारी है। मेरे पास गहना-पाता है नहीं कि बेच कर आपको ले जाऊँ।

गुरुमहाराज : पैसे चाहिए। ले आ।

श्रीमोटा : जगह दिखाना। मुझे दे ऐसी। मेरे पास नहीं है। मगरमच्छ पास जाने पैसे किस तरह मिले ?

गुरुमहाराज : अच्छा बच्चा।

तो उस दिन ८-१० आदमी आये। ९५-९६ रुपये हो गये। कोई दिन आते नहीं आदमी। क्योंकि मैं और वे दो जन अकेले ही रहते थे। ऐसे बाहर बंगला रखकर दूसरे कोई आते ही न थे। मना किया था। किसी को आने ही नहीं देना। दो ही जन हम। तब उस दिन अचानक आदमी आये। ९५-९६ रुपये रखे। लो।

गुरुमहाराज : बच्चा देखो। पैसे आ गये। अब तुम ले चलो। मगरमच्छ देखने ले जा।

मैं तो पंचायत में पड़ा। मगरमच्छ देखने कहाँ ले जाएँ? वडोदरा में कमाटीबाग में बड़े मगरमच्छ हैं। और खंभात दरिया है। वहाँ कदाचित् हो। तो वहाँ ले जाऊँ। वह कहते नहीं दूसरा। बारबार सौ बार बोले होंगे। बालक के मुआफिक। अब मुझे तब चिढ़ चढ़ी थी। बापजी, आप बोला करते हो, किन्तु जगह का नाम तो देते नहीं। कहाँ मुझे ले जाना? बस ले चलो अभी। इतनी सारी हठ ली कि मैंने कहा मुआ चलो, चलो स्टेशन पर आकर आणंद तक की टिकट ली।

मगरमच्छ की खोज और गुरुमहाराज का वर्तन

फिर आणंद आया इससे मैंने गुरुमहाराज को कहा कि यहाँ से बड़ा दरिया आता है। दरिया में तो मगरमच्छ हो ही। इस तरफ मुंबई जाता है। वडोदरा है। वहाँ बड़े-बड़े पानी के कुँड हैं। उसमें बड़े-बड़े जबरदस्त मगर हैं। और इस तरफ रणछोडजी का मंदिर है। उस रणछोडजी को मगरमच्छ कहते हो तो वे वहाँ हैं। तो भी जवाब न दे। यहाँ ले जा ऐसा कहते ही नहीं वे तो। बहुत मुश्किल है ऐसे लोगों के साथ काम निबटाना हंअ... साहब।

मुझे तो गुरुमहाराज ने सिखाया था उस तरह हम रहते हैं। इससे बाधा लोगों को नहीं आती। अगर असल हमारी रीत अनुसार रहूँ तो घड़ीभर लोग संग्रह न करे। साहब सच कहता हूँ। हमें पता नहीं किसे मगरमच्छ कहते हैं, वह भी मुझे पता नहीं। फिर फिरते-फिरते गोमती के किनारे पर कुआँ है। उसके पास उस पर एक आदमी मैला-गंदा जैसा पड़ा रहा था। ठीक वहाँ ही वर्षा में, ठंड में, धूप में। वहाँ ही रहता वह। वर्षा में भी।

उनके साथ मेरे गुरुमहाराज ने अद्‌भुत प्रदेश की बातें की। हमें समझ नहीं आती साहब। कुछ आकाश की और ऐसी सारी बातें करते। आप कहाँ सोते हो? मेरे गुरुमहाराज ने कहा, मैं तो आकाश में सोता हूँ। कि आप कहाँ सोते हो? कहा कि कभी वायु पर। तेज पर, कभी पृथ्वी पर, जल पर। हमेश का आकाश में सोने का अभी हुआ नहीं है। ऐसी सब बात करते। आज तो मैं समझता हूँ। तब नहीं समझता था। फिर मुझे कहा देख वह मगरमच्छ है। अब उसे कौन पहचाने? कितने सारे वर्ष तक वह डाकोर में था।

मगरमच्छ को गुरुमहाराज की सिफारिश

कभी करता है सही। उसे फिर कह गये। मेरी सिफारिश कर गये। इस लड़के को आपके पास लाया हूँ कि हमारे पास आ सके ऐसी स्थिति नहीं है उसकी। पैसे नहीं हैं। यहाँ डाकोर पास में है। इससे आपको पूछने करने आये तो सीधा जवाब देना। उलटी-सीधी भाषा में जवाब न देना। तो कहा, दूँगा। तीनेक बार गया था। बहुत अच्छे जवाब दिये थे। अब उसे कौन पहचाने ? ऐसा अनुभवी है कौन पहचाने ? कौन माने यह ? पढ़े-लिखे लोगों की तो बुद्धि ही पहुँचती नहीं वहाँ।

अब ऐसा सब करते भी उसे कर्म हैं सही। उसे कर्म हैं। मनादिकरण द्वारा वह कर्म करता होता है। उसे अनेक के साथ संबंध है। निमित्त के कारण। इससे भेद रहता है। **जीव**दशा में कर्म essential। उसमें किसी को भेद नहीं है। सभी को कर्म करना ही पड़े। थोड़ा-बहुत माप में। किन्तु अनुभव की स्थिति में categories में फर्क। कोई सतत कर्म में लगे रहे हो। कोई न भी हो। तो कि उसे ऐसे ही कर्म चाहिए ऐसा भी नहीं।

जिज्ञासु : अनुभवी के लिए कर्म compulsory नहीं है।

श्रीमोटा : कर्म है सही। किन्तु अमुक ही कर्म। मनादिकरण आये। निमित्त आया। उससे कर्म आया। निमित्त की बात हम स्वीकार करें, इससे कर्म तो आया उसे। किन्तु अमुक व्यक्ति द्वारा करते हो। अमुक प्रत्यक्ष रूप से करते हैं और अमुक अपने—आप करते हैं। सूक्ष्म भाव से। केवल भाव से हो। मनादिकरण भी उड़ जाते हैं। केवल एक भाव रहता है उसमें। निमित्त की व्यक्ति रहे और अपना भाव उसमें रहे। उस तरह भी करता है वह कर्म। इस अनुभवी पुरुष को तब कर्म रहता है सही। किसी न किसी प्रकार से कर्म रहता है। किन्तु essential नहीं उसे। बिलकुल essential नहीं। उसे कपड़े पहनने essential नहीं। वह तो पहने वह कपड़े, लोगों को पसंद न लगे इससे। बाकी उसे कपड़े पहनने चाहिए ऐसा कुछ नहीं।

।। हरि: ॐ ।।

४. समकालीन संतों में पू. श्रीमोटा का विशिष्ट प्रदान

पू. श्रीमोटा के समकालीन संतों में प्रसिद्ध संत पू. श्री रणछोड़दासजी महाराज, श्री प्रकाशानंदजी (गोदडिया महाराज), श्री सरयूदासजी महाराज आदि गिन सकते हैं। पू. केशवानंदजी (धूनीवाले दादा), श्रीअविनाश बालयोगी, श्रीनथ्थुराम शर्मा मस्तराम महाराज आदि संतों के साथ पू. मोटा को अत्यंत निकट का परिचय था। पू. मोटा के यौवनकाल में जगप्रसिद्ध स्वामी विवेकानंद, परमहंसदेव भगवान रामकृष्ण, स्वामी रामतीर्थ आदि संतों का प्रभाव इस देश पर बहुत ही था। पू. गांधीजी को देश की मुक्ति के महायज्ञ में सहायक भारत के नेताओं पर भी इन संतों का जबरा प्रभाव था। ऐतिहासिक दृष्टि से तो इस सोये हुए देश के प्राण जगानेवाले स्वामी विवेकानंदजी थे। उन्होंने जगाये हुए प्राण को कार्य की योग्य दिशा पू. महात्मा गांधीजी ने दी थी। खुद पू. मोटा पर गांधीजी का खूब प्रभाव था। गांधीजी के एकएक ललकार को उन्होंने सक्रिय रूप से पकड़ लिया था। स्वदेशमुक्ति उपरांत गांधीजी के जीवनकार्य का प्रधान अंग पिछड़े हुए, तिरस्कृत, अस्पृश्य कोमों को हरिजन नाम से प्रतिष्ठा दी और वे भी हिन्दू समाज का एक अविभाज्य अंग हैं ऐसा भान उन्होंने कराया था और फिर पू. मोटा के ही एक भाई * तो अस्पृश्यता निवारण के कार्य में भी कूदे थे। गुजरात हरिजन सेवा में कूदनेवाले वे पहले सवर्ण थे।

हमारे समाज में संतों की पहचान केवल उनके वेश या भजन-कीर्तन आदि से होती है। लोगों की सामान्य मान्यता ऐसी है कि संत यानी समाजजीवन से अलग होकर एकांत-निवास करके जप, तप, व्रत आदि से जीवन को विकसित करना और अपनी दूसरी सब जवाबदारी समाज पर लादना, मानों स्वयं समाज से कोई अलग ही प्राणी है और समाज के दु:ख-सुख साथ मानो उनको कुछ ही लेनदेन नहीं है। इस तरह जीने में खुद वैरागी है। ऐसा लोगों में भान जगाने में ही अपने संतपन का सार्थक्य है ऐसा मानते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' में बहुत स्पष्ट रीत से कहा है कि जब मनुष्य के अंत:करण की शुद्धि हो, तनमन निर्मल बने और प्राणीमात्र में ब्रह्म का दर्शन हो, तब मनुष्य राम जैसा

* ज्येष्ठ बंधु श्री जमनादासभाई

बनता है। मन, बुद्धि, अहंकार को अंत:करण कहा जाता है। उस अंत:करण की शुद्धि यानी क्या ? जीवमात्र में चेतनतत्त्व रहा है और वह चेतनतत्त्व ही मन रूप से, बुद्धि रूप से और अहम् रूप से प्रकट होता हैं। यदि वह चेतन न हो तो मन, बुद्धि और अहंकार का अस्तित्व रहता नहीं। शव को मन, बुद्धि और अहंकार रहते नहीं, यानी कि उसमें चेतन का व्यक्तपन बंद हो जाता है। ऐसा भान जिसे प्रगट हो और सतत यह भान जागृत रहे, तब अंत:करण की शुद्धि हुई मान सकते हैं।

पू. मोटा के साथ में एक बार मेरी निजी चर्चा हुई थी। पू. मोटा को मेरे से पूछा गया कि यदि परमात्मा सर्वव्यापी हैं, तो वे शव में हैं या नहीं। शव में वे न हो तो परमात्मा के सर्वव्यापकपन विषय में क्या समझना ? यद्यपि साधना की दृष्टि से ऐसे प्रश्नों को अति प्रश्न कहने में आता है। पू. मोटा ने मेरे प्रश्न को खूब गंभीरता और प्रेम से सोचकर उसका जवाब निम्न लिखित दिया।

अनुभवियों चेतन की दो प्रक्रियाँ को स्वीकार करते हैं। एक अंतर्निहित (involution) और दूसरा उत्क्रांत (evolution)। पदार्थमात्र में चेतन निगूढ है। जीवंत प्राणियों में यह ! निगूढ चेतन उत्क्रांत हुआ है, इससे वह जन्म लेता है, प्राण लेता है, बढ़ता है, प्रजनन करता है और मरता है। सभी प्राणी योनियों में मानव सब से अधिक उत्क्रांत है। यानी कि उसमें ऊपर की प्रक्रियाँ उपरांत मन, बुद्धि और अहंकार विकसित हुए हैं। यह उत्क्रांत की प्रक्रिया सतत चालू ही है। जिसे हम जड़ पदार्थ कहते हैं, उसमें भी चेतन तो है ही, किन्तु वह निगूढ कक्षा में है। मानव में चेतन सब से अधिक उत्क्रांत हुआ है। इससे वह विचार कर सकता है, संवेदनशील है, बुद्धि से विवेक कर सकता है और अहं द्वारा अनेक ललकार पकड़ सकता है। मनुष्य जब मर जाता है, तब उसका उत्क्रांत चेतन फिर वापस अंतर्निगूढ बन जाता है। इससे शव में भी चेतन है, किन्तु वह अंतर्निगूढ है। इससे परमात्मा के सर्वव्यापकपन को बाधा नहीं लगती। इस प्रकार पू. मोटा ने मेरे प्रश्न का जवाब देकर मेरे मन का समाधान कराया था।

अनुभवियों कहते हैं कि उत्क्रांति (evolution) की प्रक्रिया सतत चालू ही है। उत्क्रांतिवादियों तो कहते हैं कि मानव क्रम अनुसार बंदर में

से उत्पन्न हुआ है। सतत कार्य करती उत्क्रांति की प्रक्रिया मानव से ही रुक जाय ऐसा मानना वह सतर्क नहीं है। मानव भी क्रमानुसार उत्क्रांत होते-होते अतिमानव या देव बने ऐसी श्रद्धा रखनी और उत्क्रांति की गति समझकर मनुष्य को उस प्रक्रिया को सहकार देना। वह गति संभव है वैसा मानकर वर्तन में केवल तरंग या कल्पना है ऐसा सोचकर जीने में सही रीत से देखते अविचार है।

हम मन और बुद्धि खुले रखकर यदि देखते होंगे तो पता लगेगा कि हम जो सामान्य मनुष्य हैं उसकी अपेक्षा सच्चे संत बहुत ही अधिक उत्क्रांत हुए देखने में आते हैं। प्रत्येक देश और काल में ऐसे उत्क्रांत हुए संतों की एक अखंड कतार चलती ही आई हुई है। हमारे देश में महाप्रभु चैतन्य, ज्ञानेश्वर, नानक, कबीर, तुकाराम, नरसिंह, मीरां, रामकृष्ण, विवेकानंद, बुद्ध, महावीर, गांधी, मा आनंदमयी आदि ज्ञात और अज्ञात ऐसे संतों की परंपरा अस्खलित से चली आती दिखती है। भगवान रमण महर्षि, श्रीअरविंद, लाहिरी महाशय, युक्तेश्वर, योगानंद और उसी परंपरा में प्रकट हुए श्रीहैडाखानबाबा भी हुए हैं। ये सब तो परिचित नाम ही हैं और उसमें भी श्रीकृष्णमूर्ति और दूसरे अनेक नाम जोड़ सकते हैं। किन्तु अज्ञात ऐसे संतों भी हैं। किन्तु उनके नाम गिनाते अंत न आएगा।

संतों पढ़े हुए और विद्वान ही हो ऐसा नहीं है। बिलकुल अनपढ़, पिछड़ी हुई कौम में भी संतों हुए हैं। स्व. श्री मेघाणी ने 'सोरठी संतों' नामक पुस्तक में ऐसे अनेक संतों का परिचय कराया है। गंगा सती के भजन हमें भान कराते हैं कि सच्चा ज्ञान का केन्द्र हमारे अंदर रहा हुआ है। परमहंसदेव रामकृष्ण अनपढ़ ही थे, फिर भी बंगाल के विद्वान उनकी बात सुनने दौड़ जाते। व्यक्ति को कोई सद्गुरु की कृपा से सच्चा आत्मज्ञान होते उसमें सहजरूप से ज्ञानगंगोत्री फूट निकलती है। सद्गुरु शब्द के स्मरण और उच्चारण साथ अंतर में कैसे-कैसे गहरे, गूढ़ तर्कातीत, सहज संवेदन प्रकट होते हैं, कैसा भाव प्रकट होता है, हृदय को कैसा आर्द्र बनाता है और आँखे गंगा-जमना रूप बनकर बहने लगती हैं, वे सच्चे सद्गुरु के अनुभव बिना समझ सके वैसा नहीं है। पू. श्रीमाआनंदमयीजी ने कहा है कि साक्षात् परमात्मा स्वयं सद्गुरु स्वरूप में आकर शिष्य को पकड़ लेते हैं। कोई अनुभवी प्राचीन कवि ने यथार्थ

रीत से कहा है कि गुरु ब्रह्मा है, विष्णु है, गुरु ही महेश्वर है, गुरु ही साक्षात् परब्रह्म है।

सामान्य मान्यता ऐसी है कि सद्गुरु हमें परमात्मा के मार्ग पर ले जाकर दर्शन कराते हैं। कबीरजी ने गुरु और गोविंद का भेद करके गुरु को वंदन करना उचित माना। क्योंकि गुरु ने ही गोविंद का दर्शन कराया। गहरा सोचते ऐसा भेद करना भी उचित नहीं लगता। गुरु वही गोविंद है। सद्गुरु और गोविंद में भेद करना वह सद्गुरु के सच्चे महिमा का मूल्य कम करने जैसा है। जो कवि ने 'गुरु साक्षात् परब्रह्म है' ऐसा कहा वह कथन अधिक सार्थक है। सोरठ की एक प्रसिद्ध सती तोरल के शब्द में सद्गुरु की महिमा का बहुत प्रभावपूर्वक ख्याल देने में आया है।

''गुरु के गुण का नहीं पार, भक्ति दोधारी तलवार की धार,
निगुरा क्या जाने वह सार, उसका व्यर्थ गया अवतार,
आईये जेसलराय, सच्चे संतों हो वहाँ जाकर रहेंजी।''

'नुगरा' शब्द सोरठी भाषा का प्रयोग है।'

जो गुरु बिना का हो, उसे 'निगुरा' कहते हैं। तोरल कहती है कि 'निगुरा' का अवतार व्यर्थ जाता है। निकम्मा जाता है।

पू. मोटा ने 'श्रीसद्गुरु' ग्रंथ में इतने तक लिखा है कि 'गुरु' बिना हमें एक भी क्षण जीना हराम है। पू. मोटा के साथ में एक बार मुझे एक सज्जन के वहाँ जाना हुआ था। उस भाई की रेलवे स्टेशन के पास एक लोज है। वे पू. मोटा के पास कभी-कभी आते थे। उनको श्रीअरविंद के साहित्य में रस था। हम लोज में दोपहर बाद गये। सज्जन ने हमें उनकी ऑफिस में बिठाया और वे अपने काम पर गये। उस संध्या को हमें वहीं भोजन लेना था। पू. मोटा और मैं अकेले पड़े। बातों में लगे। मुझे एक प्रसंग याद आते मैंने पू. मोटा को कहा,'**मोटा**, मुझे एक प्रसंग याद आता है और इस प्रसंग का मेरे पर गहरा असर हुआ है।' पू. मोटा ने मुझे उस प्रसंग कहने सूचन किया। वह प्रसंग निम्न के अनुसार है।

परमहंस रामकृष्णदेव को शरीर छोड़ने से पहले चार-पाँच दिन थे। वे बिछौना में बीमारी में पड़े थे। कमरे में कोई न था। तब कुछ काम के लिए श्रीनरेन (स्वामी विवेकानंद) उस कमरे में आये। काम पूरा करके जाने के लिए बाहर निकलने जाते थे, तब परमहंसदेव ने उनको

बुलाया। खाट पर अपने पास बिठाया और बोले,'नरेन बेटा, तेरी कोई इच्छा है ? हो तो बोल दे।' नरेन (विवेकानंद) हाथ जोड़कर बोले, 'भगवान, मेरी इच्छा इतनी ही है कि परमात्मा के ख्याल में मैं आपको कभी न भूल जाऊँ।' यों कहकर नरेन रो पड़े। यह बात करते मेरी आँखे गीली हुई। किन्तु पू. मोटा तो आठ—आठ आँसू रो पड़े। यह प्रसंग मैं भूल नहीं सकता। जीवन में सद्गुरु क्या है उसका भान मुझे तब सचमुच प्रकट हो गया। पू. मोटा ने 'श्रीसद्गुरु' ग्रंथ में जो लिखा है कि 'सद्गुरु बिना हमें एक क्षण भी जीना हराम है।' इन शब्दों की यथार्थता ऊपर के प्रसंग से बहुत स्पष्ट रूप से समझ में आती है।

'गुरु बिना एक क्षण भी हम जी नहीं सकते, जीना हराम है।' यह कथन केवल भाषा का विलास नहीं है। उसमें कोई भी प्रकार की अत्युक्ति भी नहीं है। पू. मोटा के इस कथन का हार्द अनुभव बिना समझ नहीं सकते। सद्गुरु का मिलन और प्राप्ति सद्गुरु का हमारे जीवन में प्रतिष्ठित होकर उसके परिणाम से व्यक्ति का सुषुप्त चेतन जागकर ऊर्ध्व आरोहण कर मस्तिष्क के तालु के भाग में ब्रह्मरंध्र में रहे हुए सहस्त्रार चक्र में स्थिर होना वह एक आध्यात्मिक घटना (phenomenon) है। चेतन का यह स्पर्श जैसे हृदय की धड़कन और नाड़ी की धड़कन हम अनुभव कर सकते हैं, वैसे स्पष्ट रूप से अनुभव कर सकते हैं। इसे अध्यात्म की परिभाषा में 'कुंडलिनी जागृति' कहते हैं। श्रीअरविंद इसे psychic opening या चैत्य पुरुष का जागरण कहते हैं। इसे योग का पाया कहते हैं। हमारे अंदर रहा हुआ चेतनतत्त्व हमारे श्वासोच्छ्वास को जन्म से मरण तक सतत चलाता है। वह मन, बुद्धि, अहंकार रूप से स्फुरित होता है। सद्गुरु की कृपा से व्यक्ति को जागा हुआ चेतन उसकी प्रकृति का रूपांतर कराता है। इससे पू. मोटा ने गाया है,—

'क्या प्रेम का जगत में बदला कुछ हो,
तो वह हो जीवन के पूर्ण रूपांतर से।'

सद्गुरु वह कोई मात्र व्यक्ति नहीं है, किन्तु चेतनतत्त्व का व्यक्तत्व (manifestation) है। इससे ही श्रीशंकराचार्यजी ने कहा है कि सद्गुरु का देह व्योम (आकाश) जैसा व्याप्त है। पू. मोटा ने 'श्रीसद्गुरु' ग्रंथ में लिखा है कि सद्गुरु की बैठक आकाश में होती है। इसका अर्थ यह है कि सद्गुरु केवल शरीर ही नहीं है। उनके शरीर में रहा हुआ चेतन

आकाश जितना व्यापक होता है। शरीर तो केवल इस व्यापक चेतन का स्थूल आधार है और आखिर में तो यह आधार भी सत्त्वरूप बन जाता है। शरीर का प्रत्येक कोष सचेतन बनता है। इससे तो कहा गया है कि सद्गुरु विचार, दृष्टि और स्पर्श से पात्र शिष्य के सुषुप्त चेतन को जगा सकते हैं।

श्रीसद्गुरु की कृपा से व्यक्ति का जागा हुआ चेतन तालु के भाग में ठोस स्पर्श रूप से अनुभव में आता है। वह मनुष्यजीवन की विरल घटना है और वह इतनी तो आह्लादक होती है कि फिर व्यक्ति से उसका अभाव सहन नहीं हो सकता। प्रारंभ में यह स्पर्श आने-जाने की स्थिति में होता है। जिस तरह बहुत बार अखंड दीया सँभालने के लिए सतत सावधानी रखनी पड़ती है, जागृत रहना पड़ता है, उसी तरह यह गुरुकृपा से प्राप्त अमूल्य दान को सँभालने सतत सावधानी और जागृति रखनी पड़ती है।

जीवन के प्रधान रस का केन्द्र ही यह स्पर्श बन जाता है। कहो कि वही जीवन बन जाता है। कदाचित् यह स्पर्श लुप्त हो तो मरण जितनी पीड़ा होती है। तमाम सुखचैन उड़ जाते हैं और पुनः प्राप्त न हो, तब तक जीना जहर समान लगता है। इससे ही पू. मोटा ने 'श्रीसद्गुरु' ग्रंथ में लिखा है कि 'सद्गुरु बिना जीना हराम है।' ये शब्द मात्र भाषा का विलास नहीं है, किन्तु जीवन का वास्तविक अनुभव है।

अखंड दीया सँभालने से भी अधिक सावधानी और जागृति इस स्पर्श को बनाये रखने आखिर में नित्य के लिए स्थिर करने सतत जागृत रहना पड़ता है, ध्यान रखना पड़ता है। इसमें से ही योग में जिसे ध्यान कहते हैं, वह ध्यान सहज रूप से शुरू होता है। योग के आठ अंगों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, गुरुकृपा से सहजरूप से शुरू होता है।

ये सारा स्पष्टीकरण इसलिए करना आवश्यक लगता है कि पू. मोटा के विशिष्ट प्रदानों को पूर्णरुप से समझने के लिए पू. मोटा की विशिष्टता समझनी आवश्यक है। पू. मोटा जिस तरह सचमुच 'मोटा' बने उसका इतिहास ही असाधारण है। सामान्य मनुष्य की बुद्धि काम नहीं करती और समझना असंभव बन जाय ऐसी असाधारणता पू. मोटा की साधना में रही हुई है। हमने कभी शांति से अकेले बैठकर गंभीरता से सोचा है कि साधु-महात्माओं को देश पर का आर्थिक बोज economic

burden माननेवाले कर्मठ गांधीवादी **मोटा** को मध्यप्रदेश में रहे हुए धूनीवाले दादा ने अपना शिष्य पू. अविनाश बालयोगी को नडियाद से चूनीलाल को (**मोटा** को) ले आने का आदेश देना और आपश्री पू. मोटा को दीक्षा देना। क्या यह बात असाधारण नहीं है ? इसके पहले पू. मोटा ने नर्मदा नदी में कूद कर देहत्याग करने का प्रयत्न किया और उसमें से असाधारण रूप से बच जाना और भान होना कि 'मैंने कुछ हेतु के लिए जन्म पाया है।' नर्मदा किनारे रणछोड़जी के मंदिर में मिले हुए साधु ने पू. मोटा को गुरु मिलने की आगाही करना और नामस्मरण का आश्रय लेने की सूचना करना, पू. मोटा का वडोदरा में उनके आध्यात्मिक माता के घर में सीढ़ी पर से गिर जाने का बनना, वहाँ फिर से रणछोड़जी के मंदिरवाले साधु का दर्शन होना और फिर से नामस्मरण का सूचन करना और आखिर में नामस्मरण के आश्रय से मीरगी के दर्द में से मुक्ति पाना। यह सब असाधारण नहीं लगता? उसके बाद पू. उपासनीबाबा का आगमन, पू. मोटा का उनके साथ का मिलन, पू. बाबा की पू. मोटा ने की हुई सेवा, पू. बाबा ने साकोरी स्थान पर उनके आश्रम पर आने के लिए की हुई सुचना पू. मोटा को अपेक्षित संयोगों मिल जाते साकुरी शिर्डी-(महाराष्ट्र) के पास जाना। वहाँ १०-११ दिन एक आसन पर अपने ही मल-मूत्र में बैठे रहना, आश्रम के लोगों द्वारा हैरानी और आखिर में पू. बाबा की अनहद कृपा से ऊँची स्थिति की प्राप्ति होना और बाबा ने उनको कहे हुए यादगार शब्दों, 'जो स्थिति यहाँ प्राप्त की है, वह कायम रहेगी। यह सब असाधारण नहीं लगता ? इसमें हमारी सामान्य बुद्धि की समझ काम कर सके ऐसा है ?

एक मानव जीवात्मारूप से पू. मोटा की जो आंतरिक तैयारी थी, जो विरल खमीर था, जो योग्यता थी कि जिससे सद्गुरु सामने से आकर मिले और उनको ऊँचे से ऊँची स्थिति में पहुँचाये। उसका सही मूल्यांकन हम कर सके वैसा है ? कराची में शिर्डीवाले सांईबाबा के साथ दरिया किनारे मिलन, उनकी असमय में चाय और सिगरेट की **मोटा** के पास माँग, जो पू. मोटा ने पूरी की। आपश्री ने पू. मोटा को सिखाई हुई ध्यान की विशिष्ट पद्धति, कराची में ही फिर से पू. सांईबाबा की मुलाकात। दरिया में चले जाने का हुक्म और पू. मोटा ने किया हुआ पालन, कराची शहर में नग्नावस्था में खुले दिन में (रमज़ान ईद के दिन) पूरे शहर में घूमने का हुक्म और जो पू. मोटा ने यथार्थरूप से पालन कर दिखाया। पू. बाबा ने पू. मोटा को दिया हुआ मिठाई का टोकरा और जो

मिठाई खानेवाले साक्षीओं भी हैं। यह सब अलौकिक और असाधारण नहीं लगता ? और फिर बनारस में पू. मोटा जिन्हें बापु कहकर संबोधन करते उनकी पुत्रियों के साथ संरक्षक रूप में जाना, वहाँ उन बहनों के गहनें की चोरी हो जाना और पू. मोटा की प्रार्थना से चोर दौड़ता हुआ आकर गहनें वापस लौटा जाय, उसी समय में पू. मोटा की माता का देहावसान का समाचार मिला। प्राप्त कर्म छोड़कर न जाने का पू. मोटा का नियम और साथ-साथ पू. मोटा ने उनकी माता को वचन दिया था कि उनके अंतकाल में स्वयं उपस्थित रहेंगे। ऐसा धर्मसंकट आते पू. मोटा ने आर्द्रभाव से प्रार्थना की और वे उनकी माता के खाट पर माता के पैर दबाते हुए दिखे और माता ने संतोषपूर्वक शरीर छोड़ा। यह प्रसंग पू. मोटा की अद्‌भुत आध्यात्मिक स्थिति का ख्याल देने पर्याप्त नहीं हैं ? कैसी उनकी प्रार्थना की, संकल्प की ताकत ? कितना ऊँचा आध्यात्मिक सामर्थ्य। सच्चे संतों में सत्य संकल्प यानी कि संकल्प हमेशा सिद्ध हो ही उसका सामर्थ्य प्रकट होता है।

बनारस में रामनवमी की रात को दूर से कोई साधु ने बूम लगाकर पू. मोटा को बुलाया। पू. मोटा ने सामने से 'हरि:ॐ' की पुकार करके जवाब दिया। साधु ने नज़दीक आकर सूचना दी कि कराची में जो ध्यान की रीत बताई है, उसके अनुसार ध्यान न करने मेरे गुरु ने आदेश दिया है। उसके गुरु मणिकर्णिका के घाट के सामने किनारे पर उनकी उपस्थिति में या किसी माता की उपस्थिति में ही यह ध्यान करना, अन्यथा परिणाम बुरा आयेगा ऐसा भी आदेश दिया है। पू. मोटा ने 'बापु' की पुत्रियों को छोड़कर कहीं भी जाने में अपने स्वधर्म का अनादर देखा, इससे उस साधु को हाथ जोड़कर उसके गुरु के पास जाने मना किया।

उस साधु के जाने के बाद पू. मोटा ने कराची में बाबा ने सिखाई रीत से ध्यान, उस साधु की स्पष्ट नकारात्मक सूचना होने पर भी किया, परिणाम में उस रामनवमी की रात को पू. मोटा को 'मैं सर्वव्यापक हूँ' 'I am Omnipresent' ऐसा अनुभव हुआ और पू. मोटा को अपने सत्य स्वरूप का जीवन में सत्य का और अपने जन्म के हेतु का साक्षात्कार हुआ। इससे ही रामनवमी पू. मोटा का साक्षात्कार दिन रूप से मनाते हैं। मेरी स्मरणशक्ति अनुसार उस दिन सन् १९३९ की २९ वीं मार्च थी। यह सब कितना अलौकिक है ? पू. मोटा को कितने महान संतों ने कैसी अलौकिक रीत से गढ़े हैं और कैसी बड़ाई दी है और सच्चे अर्थ में

पू. मोटा सचमुच महान थे, उसका ख्याल हमारे में बुद्धि हो तो आना चाहिए। हमें भान होना चाहिए कि ऐसे एक अलौकिक सामर्थ्यवान संत पुरुष के साथ हम संपर्क में आये थे। उनके साथ जीने का, बातचीत करना, उनके प्रेम का आस्वादन करने में हम कितने बड़भागी, सद्भागी थे। हम उनकी भावना को, उनकी सूचनाओं को जीवन में कितने अंश में साकार की उसका हमें प्रामाणिक रूप से अंतर में गहरा सोचकर अंदाज लगाना चाहिए। सच्चे हीरे की परख करने के लिए हमारे में एक सच्चे जौहरी की कला होनी चाहिए। अन्यथा नादान बालक की तरह सच्चे हीरे को भी काँच का टुकड़ा मानकर जहाँ—तहाँ फेंक देने का बन जाय। अनुभवियों कहते हैं कि संतों का संग होना वह परम सद्भाग्य है और उसमें भी संत की सेवा का लाभ मिले वह तो उससे भी बड़ा सद्भाग्य है। हमारा धर्म यह है कि हम अनेक को ऐसे एक विरल महासंत का संग मिलना सद्भाग्य मिला था। पू. मोटा की सच्ची बड़ाई को पहचानते हों, उनके आदेश को जीवन में उतारकर हमारे प्राकृत जीवन को संस्कृत बनायें और पू. मोटा की सच्ची बड़ाई को समझकर उनके संग को हमारे रूपांतरित जीवन द्वारा रोशन करें, वही पू. मोटा के प्रति प्रेमभक्ति का सार्थक्य है।

पू. मोटा ने 'जीवनदर्शन' नामक एक ग्रंथ में खूब प्रभावपूर्वक कहा है कि 'आज मैं हूँ और आपको टोककर, बार-बार कहकर रास्ते पर लाने का सतत प्रयत्न कर रहा हूँ, किन्तु मेरा शरीर नहीं हो, तब आपको सब याद आएगा और पछतावा होगा कि हाथ आया हुआ अवसर आपने व्यर्थ जाने दिया। ' सूरदासजी ने सच कहा है कि, *मन पछित ही हो अवसर बीतें'* यानी कि हे मन, अवसर बीत जाने के बाद तुझे पछताना पड़ेगा। एक चिंतक ने सच कहा है कि '**पूज्य भाव का सच्चा लक्षण आज्ञांकितता है, हम सत्पुरुष की प्रतिमा पधरायें, प्रतिमाएँ खड़ी करें, माला पहनायें, चंदन-कुमकुम से तिलक करें, झुक-झुक कर नमस्कार करें, किन्तु उनके आदेश का प्रामाणिक रूप से पालन कर जीवन में फेरफार न हो, यानी कि प्रकृति का रूपांतर न हो तो उस पूजन-अर्चन का कोई मूल्य नहीं है।** पू. मोटा तो यहाँ तक कहते थे कि आपकी साधना से स्वयं भगवान आपके सामने आकर खड़े हो जाय तो भी उससे हर्षित नहीं हो जाना।

दक्षिण के महान संत पू. रामदास स्वामी एक गुफा में बैठकर साधना करते थे, तब उनको स्वयं की नजर समक्ष प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण को

नाचते देखे थे, किन्तु उससे खुश न होते उन्होंने ऐसी प्रार्थना की थी कि प्राणीमात्र के हृदय में बैठे हुए कृष्ण को मुझे देखना है। मुझे इस दर्शन से संतोष नहीं होता।

अब तक पू. मोटा की सच्ची महिमा का ख्याल देने का यत्किंचित् प्रयत्न किया। यद्यपि इससे संतोष हो ऐसा नहीं है। एक संस्कृत कवि ने सुंदर श्लोक में लिखा है कि काले पहाड़ का काजल बनाकर दरिया जितना दावत में भरकर दैवी वृक्ष की शाखा की कलम बनाकर साक्षात् शारदा अनंतकाल तक लिखा करें तो भी हे ईश्वर तेरे गुणों का पार न आये यही शब्द पू. मोटा की बड़ाई का माप निकालने पूर्णरूप से लागू होते हैं। पू. मोटा की महिमा का थोड़ा ख्याल आये तो उनके जीवन दरमियान उन्होंने किये हुए विशिष्ट प्रदानों की समझ आ सकती है। पू. मोटा ने जो कुछ किया है, वह उनकी ऊँची आध्यात्मिक स्थिति के संकल्प से हुआ है।

कल्पना करो कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हजारों वर्ष में अवतरित हो वैसे ईसु और बुद्ध जैसे महान अवतारी पुरुष थे। उनके देहांत के समय पर पूरा देश और दुनिया आक्रंद करते थे। राज का बल उनके पीछे था। किन्तु उनके स्मारक के लिए खूब प्रयत्न करने पर भी केवल ग्यारह करोड़ रुपये एकत्रित हो सके थे। श्री कस्तुरबा के स्मारक के लिए पू. गांधीजी की उपस्थिति में केवल सवा करोड़ रुपये हुए। तब हमने प्रत्यक्ष देखा कि पू. मोटा के पीछे तुलना में कम प्रयत्न से और पू. मोटा की अपनी महत्ता के कारण से करोड़ों रुपये का ढ़ेर एकत्र हुआ और अभी हो रहा है। यह कार्य हो रहा है, उसका कारण हमारी कोई शक्ति काम कर रही है ऐसा नहीं है। पू. मोटा की संकल्पशक्ति ऐसी प्रबल है कि उन्हें समाज को बैठा करने हेतु से जो-जो कुछ करना चाहा उसमें प्रजा ने संकोच बिना दिया और अभी भी अज्ञात स्थानों से दान का सतत प्रवाह चलता ही रहता है।

श्रीसद्गुरु ने ही उनको समाज को बैठा करने का आदेश दिया और केवल भगवान के हेतु के लिए ही जीने का आदेश दिया। उसके अनुसार उन्होंने जीवन के अंतिम श्वास तक कर्म किये और शरीर छोड़ने के बाद भी आखिरी कितने वर्षों से अभी भी उनका संकल्प काम कर रहा है, वैसा प्रत्यक्ष देख सकते हैं। समकालीन संतों में पू. मोटा की विशिष्टता वह थी कि उन्होंने सद्गुरु की कृपा से मिली असाधारण शक्ति

से समाज को बैठा करने की प्रवृत्ति में ही जीवन और लगा दिये। हम देखते हैं कि सामान्य रूप से प्रतिष्ठित साधु-संतों के चरणों में करोड़ों रुपये के दान आते हैं, किन्तु उसका उपयोग देश-परदेश में बड़े—बड़े मंदिर बनाने में और अन्य पारंपरिक रीति से होता है। समकालीन पू. रणछोड़दासजी महाराज कहते थे कि भारत में कितने ही देवस्थानों में अरबों रुपये की संपत्ति है। कई मंदिरों को वार्षिक आय ही पंद्रह से बीस करोड़ रुपये तक की होती है। किन्तु देश की आधी जनता आधा पेट से जीती है और मंदिरों में अन्नकूटों के डुंगर लदते हैं और उसे भी प्रसादरूप से बेचकर पैसे पैदा करते हैं। कल्पना करो कि देश में राम, कृष्ण, बुद्ध या गांधी होने की सँभावनावाले करोड़ों लोग भूख से मर जाते हो, तब मंदिरों के वैभव को धर्म किस तरह कहा जाय ? पू. मोटा को पूर्णरूप से समझ में आ गया था कि देश का समाज प्राण खिंच रहा है, किन्तु उसमें जीवन रहा नहीं है। मृत:पाय दशा में जैसे-तैसे श्वास खिंच रहा है। हम सामान्य रूप से किसी भी तरह प्राण टिकाये रखने को ही जीवन समझते हैं। स्वमान बिना के तिरस्कृत जीवन को टिकाये रखने में भी हमें संकोच या शरम लगते नहीं।

पू. मोटा ऐसे मृत:पाय समाज को प्राणवान करने, खमीरवान बनाने, साहस और पराक्रम करने के लिए बैठा करने चाहते थे। समकालीन संतों में पू. मोटा की यह एक विशेषता थी। यह प्रसंग याद आ जाता है कि स्वामी श्रीविवेकानंदजी अमरिका के एक अमीर के यहाँ मेहमान थे। रात में सुंदर मृदु शय्या में सोये थे, तब अचानक जाग गये और उनको ख्याल आया कि मेरे लाखों भारतवासियों भूख से मर रहे हैं और आकाश नीचे जमीन की शय्या पर कंगाल हालत में पड़े हैं, तब मेरे से यह चैन की निंद किस तरह ले सकूँ ? वे उस रात को सो न सके थे। स्वामी श्रीविवेकानंदजी ने जैसी समाज के प्रति भावना दिखाई उस भावना के उत्तराधिकारी पू. श्रीमोटा थे। मुझे समाज को बैठा करना है, उन शब्दों में श्रीविवेकानंदजी ने बर्षों पहले भारत की प्रजा का प्राण जगाने के लिए उपनिषद का मंत्र *'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्तिबोधत'* यानी कि जागो, उठो, श्रेष्ठ को प्राप्त करके उसका विनिमय करो। इस उद्घोषणा का प्रतिघोष पड़ता हो ऐसा नहीं लगता ?

समुद्र, सरोवर, नदी आदि जलराशि में से बिलकुल अलग पड़ा हुआ जलबिंदु एक क्षण भी न टिक सके। जलप्रवाह के साथ हो तो उसमें शक्ति, गति आदि हो, किन्तु यदि समुद्र से अलग पड़ता हो तो एक क्षण

में भापरूप बनकर स्वयं का मूल स्वरूप खोता है।

पू. मोटा एक महायोगी थे। उनके दीक्षागुरु अविनाश बालयोगी ने पू. मोटा को ललाट में प्रहार करके तीन दिन और तीन रात समाधिस्थ अवस्था में बैठाये रखे थे। परमहंसदेव भगवान रामकृष्ण को भी उनके गुरु तोतापुरी ने इसी तरह ललाट में एक तीक्ष्ण हथियार का प्रहार करके तीन दिन और रात समाधिस्थ अवस्था में बैठाये रखे थे। पूना के एक सरकारी कर्मचारी और विद्वान सज्जन जब मिलते आध्यात्मिक मार्ग पर मुड़े तब एक बार इसी तरह उनके गुरु ने उनको पूरा एक वर्ष समाधिस्थ अवस्था में बैठाये रखे थे। समाधि यह अष्टांग योग का अंतिम सोपान है।

आजकल योगासनों के अभ्यास को ही योग समझ लेते अनेकों को बोलते सुनने में आता है कि योगासनों के अभ्यास से रोगमुक्ति हो सकती है। वैसा तो आजकल वैद्यकीय अभ्यासक्रमों में स्वीकार करने में आता है, किन्तु उसमें अकेले आसन योग्य नहीं हैं।

श्रीमद् भगवद्गीता दुनिया के अतिशय लोकप्रिय ग्रंथो में से एक माना जाता है। बहुत सारी आधुनिक भाषाओं में उसका भाषांतर हुआ है। भारत में तो गीता का पाठ संस्कृत न समझनेवाली बहनें भी प्रतिदिन करती होती हैं।

इस श्रीमद् भगवद्गीता के १८ अध्यायों में अनेक बार श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा है,' तु योगी बन तस्माद् योगी भवार्जुन,' 'हे अर्जुन तू योग में प्रतिष्ठित होकर कर्म कर।' 'योगस्थः कुरु कर्माणि।' (२/४८)

पू. मोटा एक महायोगी थे। जिस तरह उन्हों ने जीवन दरमियान संकल्पों करके कार्य सिद्ध किये, जिस तरह मौनमंदिरों की स्थापना की और अपनी विशेष साधना-प्रणाली प्रचलित की। वर्षों से वह सतत चल रही है, जिसमें देशी और परदेशी साधकों ने पू. मोटा की चेतना का अनुभव किया है, और जिस तरह अंत में उन्होंने स्वेच्छा से शरीर का त्याग किया। यह सब पू. मोटा एक चेतनारूढ योगी थे, वह स्पष्ट दिखता है। हम संत शब्द का प्रयोग भी मनमानी रीत से करते हैं। उसी तरह 'योगी' शब्द का प्रयोग करते होते हैं। ऐसे अनेक शब्द हैं, जिसके प्रयोग पीछे हमारी समझ स्पष्ट नहीं होती। योग क्या है और योगी में और सामान्य आदमी में क्या भेद है, यह समझने जैसा है और पू. मोटा के संग से और कृपा से जो समझ में आया है, वह यहाँ लिखने का प्रयत्न करूँ और पू. मोटा बार-बार कहते थे कि जो बाबत का हमें अनुभव न हो

उसकी बात कभी नहीं करनी। यह एक पू. मोटा की विशिष्ट देन है।

थोड़ा विचार करते हमें अवश्य समझ में आएगा कि यह अखंड और अद्‌भुत विश्व के हम एक अंश हैं। We are a part of the whole universe.

अखंड़ के एक अंश रूप से यानी कि समग्र विश्व के एक अंश रूप में हम बिलकुल तुच्छ, नगण्य हैं, किन्तु ऐसे अद्‌भुत विश्व के एक अंश होने से हम सचमुच महान भी हैं। रज भी सुवर्ण की हो, एक कण भी सच्चे हीरा का हो तो उसकी कीमत बहुत मानी जाती हैं। सच्चा योगी यह जानता है और इससे उसे सतत एकसाथ simultaneously अपनी तुच्छता और महानता का भान awareness सहजरूप से रहा करता होता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीकृष्ण ने महाभारत में दिया है। पांडवों के राजसूयज्ञ में 'युगपुरुष' रूप से पूजन भी स्वीकार किया और यज्ञ में सभी का जूठन उठाने का अघटित काम भी किया था। सूरदासजी ने एक पद में कहा है–

राजसूय यज्ञ युधिष्ठिर कीन्हा, तामे जूठ ऊठाई,
प्रेम के बस पारथ रथ हांक्यो, भूल गये ठकुराई,
सबसे ऊँची प्रेम सगाई...।

इससे ही श्रीकृष्ण को योगेश्वर कहे हैं और गीता में बारबार अर्जुन को योगी होने श्रीकृष्ण ने उपदेश दिया है। हम जब तक **जीव**दशा में जीते हों, तहाँ तक यह 'योग' की स्थिति क्या है, उसकी कल्पना आनी भी संभव नहीं हैं। **जीव**दशा में **जीव**मात्र अपने 'अहं' पर, अपनी 'ममता' पर मुश्ताक होते हैं। स्वयं हररोज अपने जैसे ही अनेक व्यक्तियों को कांधे पर लेकर श्मशान में ले जाकर जलाकर भस्म कर पानी में बहा देकर वापस लौटता है, फिर भी 'जीव' की अहंता और 'ममता' की पकड़ छूटती नहीं है। स्वयं मानो कभी मरने का ही न हो ऐसा मानते आदमी जीते जाता है। महाभारत में एक प्रसंग आता है। युधिष्ठिर को पूछने में आया था कि सब से बड़ा आश्चर्य कौनसा ? उसके जवाब में उन्होंने कहा था,– *अहनि अहनि लोकनि गच्छन्ति यमालय। शेषाः स्थावरमिच्छन्ति।*

इससे बड़ा आश्चर्य कौनसा ? यानी कि प्रतिदिन लोग मरते हैं, किन्तु बाकी के स्वयं को स्थावर यानी टिक रहनेवाले, नहीं मरनेवाले मानते हैं, इससे बड़ा आश्चर्य दूसरा कौनसा हो सकता है ?

जीव की 'अहं' और 'ममता' की गाँठ तो सद्‌गुरु की कृपा बिना

अन्य कोई भी साधन से टूटती नहीं। गुरुकृपा से स्वरूप का भान होते ये गाँठे टूटती हैं और हमारे अंदर रहा हुआ जीवंत चेतनतत्त्व है, जिसके कारण से हम मन द्वारा संकल्प-विकल्प कर सकते हैं, बुद्धि द्वारा विवेक-विचार कर सकते हैं, जिसके कारण से हम 'मैं' 'मैं' करते जी सकते हैं, उसके साथ हमारा जुड़ना होता है और हमें भान प्रकट होता है कि इस चेतन के कारण से ही हम मन, बुद्धि, अहंकार रूप से व्यक्त हो सकते हैं। इस चेतन के अभाव में हमारा अस्तित्व नहीं हो सकता। हमें भान प्रकट होता है कि 'मैं' 'मैं' यानी इस चेतन का स्फुरण, व्यक्तत्व। 'मैं' यानी मात्र शरीर नहीं, अमुक का पुत्र, पिता, भाई, सेठ। नरसिंह मेहता ने सादी भाषा में यह गहन तत्त्व समझाया है।

'मैं' जाते 'तू' गया, अनिर्वाची रहा।

'मैं' बिना 'तू' मुझे कौन कहेगा?

'मैं' और 'तू' का अस्तित्व सापेक्ष relative है।

'मैं' ही न हो तो फिर 'तू' कहनेवाला कौन रहता?

हमारे लोगों में त्रिवेणीसंगम का माहात्म्य बहुत मानते हैं। त्रिवेणीसंगम में दो नदी प्रकट होती हैं और तीसरी नदी गुप्त सरस्वती रूप से पहचानी जाती है। यह त्रिवेणीसंगम तीर्थरूप पवित्र मानते हैं। यह एक बहुत गूढ़ फिर भी सुंदर प्रतीक है। 'मैं' और 'तू' मिलें वे दोनों प्रकट सरिताएँ हैं। अगर हम दो के मिलन से हमारे दोनों के अस्तित्व कारणरूप 'वह' यानी चेतनरूप प्रभु प्रकट हो तो समझना कि त्रिवेणीसंगम का पवित्र तीर्थ प्रकट हुआ, किन्तु हम दो —'मैं' और 'तू' मिल कर गालीगलौज करें, मारकुटाइ करें, छुराबाजी करें तो हम तीर्थ के बदले श्मशान निर्माण करते हैं। सामान्य मानवसमाज को जीवन इस प्रकार का दिखता है। कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बनाने के लिए ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को योगी होने का उपदेश दिया है। ऊपर कहा वैसे योगी को गुरुकृपा से ऐसा एकसाथ भान प्रकट होता है कि स्वयं इस विश्व का एक अंश रूप से तुच्छ है और ऐसे अलौकिक विश्व का एक अंश होने से स्वयं भी अलौकिक महानता धारण करता है। यह एक वास्तविक स्थिति है। हरएक व्यक्ति में यह क्षमता रही हुई है, किन्तु सच्चा भान प्रकट करानेवाले सद्गुरु की कृपा होनी चाहिए।

पू. मोटा को ऐसे सद्गुरु मिले थे और विरल संतों का संपर्क हुआ था, जिसके कारण वे सचमुच एक महायोगी 'मोटा' बन सके और

समकालीन संतों में सब से अधिक विशिष्ट प्रकार का प्रदान समाज को कर सके।

जिस प्रकार महर्षि दयानंद सरस्वती ने धर्म के क्षेत्र में नोंधपात्र क्रांति की युरोप के मार्टिन ल्युथर जैसा विशिष्ट प्रदान कर गये वैसा विशिष्ट प्रदान पू. मोटा ने आध्यात्मिक क्षेत्र में किया है। पू. मोटा स्पष्ट शब्दों में कहते कि व्यक्ति चाहे जैसी साधना करता हो, किन्तु यदि उससे प्रकृति रूपांतर होने के लक्षण प्रगट होते मालूम न पड़े तो उस साधना का कोई अर्थ नहीं हैं। पू. मोटा को कोई कहे की वह रोज तीन घंटा ध्यान करता है तो वे तुरंत कहते की भाई, आप यदि तीन घंटे ध्यान कर सकते हो तो आपमें विचारों की परंपरा बंद हो गई है ? विचारों की परंपरा यानी कि निमित्त बिना एक विचार में से दूसरा और उसमें से तीसरा ऐसे association of thoughts की प्रक्रिया बंद हुई ? सच्चे ध्यान का यह परिणाम है, लक्षण है। पू. मोटा हमेशा साधना का दावा करनेवाले को कहते कि सच्ची साधना प्रत्यक्ष लक्षणों का प्रागट्य है।

एक समय पू. मोटा के पास मैं बैठा था। तब पू. मोटा के साथ ही रहते एक सज्जन अचानक बोल ऊठे, '**मोटा**, अभी बहुत समय से... भाई दिखते नहीं हैं ऐसा क्यों होगा ?' पू. मोटा तुरंत कुछ रोष करके बोले, जा एक पोष्टकार्ड लाकर उस भाई को लिख दे कि अभी कितने समय से आप क्यों दिखते नहीं हो ? व्यर्थ विचार मत करना। विचार आये तो उसका निकाल आ जाय उस तरह उसे followup करना।' पू. मोटा का यह कहने में कितनी गहराई रही है। कितनी ऊँची आध्यात्मिक जीवन की परीक्षा रही है, वह स्पष्ट समझ में आता है।

जिसके मन, बुद्धि, अहं, क्षणक्षण परमात्मा में ही केन्द्रित हुए हो, उसे निमित्त बिना विचार भी प्रकट नहीं होता। यह सच्चे संत का प्रकट लक्षण है। पू. मोटा हमेशा स्पष्ट कहते कि आप सचमुच साधना करते हो तो उसके लक्षण प्रकट होने चाहिए। पू. मोटा का यह एक विशिष्ट प्रदान है। यही बात मेरे सद्गुरु श्रीकृष्णात्मज महाराज, जो भी पू. उपासनीबाबा के द्वारा ही तैयार हुए थे। वे कहते कि आप साबरमती जाने निकले हो, आपके घर से साबरमती कितना दूर है और किस दिशा में है, उसका आपको सचमुच भान हो तो आपकी गति अनुसार अमुक समय में वहाँ पहुँच सको, किन्तु आप चलते ही रहो और घंटो बीत जाय, किन्तु आप नियत स्थान पर पहुँच न सको तो आपको सोचना चाहिए कि दिशा, रास्ता आदि में कुछ गलती है।

इसे हम सिंहावलोकन कहते हैं। सिंह गरमी की मौसम में प्यासा हो और दूर मृगजल देखकर पीने दौड़ता है, तब पीछे देखते जाता है और देखता है कि खुद निकला था, उस स्थान पर भी मृगजल दिखता है और जहाँ जल देखा था वहाँ सचमुच जल नहीं हैं। इससे वह वापस लौटता है। इसे सिंहावलोकन कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि हम वर्षों तक साधना के नाम से कुछ-कुछ प्रयत्न करें और हमारे में कुछ बदलाव न आये, ध्येय प्राप्त न हो, इच्छित परिणाम न आये तो हमें विचार करना चाहिए कि कहीं भूल हो रही है। हम वर्षों तक प्रातःकाल जल्दी उठकर प्रार्थना करें कि 'मैं ब्रह्म हूँ, पंच महाभूतों का समूह मात्र नहीं हूँ।' किन्तु हमारे में तिल जितना भी फर्क न पड़े। कोई कुछ कहे और हमारा अहंकार घायल हो और रोष आ जाय तो सोचना चाहिए कि हम कुछ भूल कर रहें हैं।

प्रसंग-प्रसंग पर पू. मोटा रचित आरती गाते हैं,-

सभी मिले हुए के साथ, दिल सद्भाव ऊगो (२)

भले अपमान हुए हों (२), वहाँ भी भाव बढ़े... ॐ शरण...

हम इसके अनुसार जी सकते हैं ? पू. मोटा की जीवन-रीति को मैंने प्रत्यक्ष देखी हुई है। वे आश्रम के झुले पर बैठे हों और कोई परिचित आदमी वहाँ से गुजरता हो और पू. मोटा को देखने पर भी उनको टालकर गुजरने जाए तो पू. मोटा सामने से बुलाते, खुद खड़े हो जाय, उस आदमी को ऐसे बुलाये और पूछते भी सही कि कुछ रोष तो नहीं है न ? कुछ बूरा तो नहीं लगा न ? सामने से बुलाकर लाड़ करनेवाले पू. मोटा को कैसे भूल सकते हैं ? कोई विद्यार्थी वहाँ से गुजरता हो तो उसे बुलाते और पूछते क्यों भाई, पढ़ने का कैसा चलता है ? कितने घंटे पढ़ते हो ? कितने प्रतिशत मिलेंगे ? इतने प्रतिशत तो आने ही चाहिए। ठीक से पढ़ना। वचन दो कि पढ़ूँगा। निश्चय करो कि इतने प्रतिशत तो लाऊँगा ही। पू. मोटा की टोक उस विद्यार्थी में चुनौती स्वीकार करने की तमन्ना जगाते और सचमुच उसका परिणाम अच्छा आता। अपने स्वजनों को धर्म का भान कराने की पू. मोटा की यह अजब रीत थी। यह याद आये तब पू. मोटा का सच्चे स्वजनपन हमें मालूम पड़ता है और हम दिल में धन्यता अनुभव करते हैं। ऐसे सच्चे स्वजन को किस तरह भूल सकते ? **पू. मोटा की एक विशेषता थी। अपना स्वजन भूलचूक से भी स्वधर्मभ्रष्ट न हो, उसकी वे देखभाल रखते। उन्होंने एक बार मुझे आँखों में पानी के साथ कहा था,'मेरे स्वजनों अनेक बार भावना का खून करते मैं अनुभव करता हूँ।**

एक पारसी संत के साथ मुझे संपर्क हुआ था। उनको ऐसी आदत थी कि दो-तीन रुपये के पाँच-पाँच पैसे के और दश पैसे के सिक्के गड्डी खुद बैठे हो उस जगह के पीछे प्रबंध कर रखते। जो कोई माँगने आये उसे पीछे ही हाथ डालकर जो हाथ में आये वह देते। एक दिन मैं बैठा था, इतने में एक गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी आकर खड़ा रहा। पारसी संत ने हाथ पीछे डालकर जो हाथ में आया वह संन्यासी के हाथ में रखकर हाथ जोड़े। संन्यासी को जो कुछ मिला उससे संतोष न हुआ और ज्यादा पाने के लिए रुका और माँग की। मुझे हुआ कि मैं कुछ दूँ। इससे मैंने जेब में हाथ डाला। पारसी दादा मेरे पर गुस्से हुए। इतना ही नहीं, उस संन्यासी को पास में खिंचकर उसके हाथ में जो दिया था, वह वापस लेकर पीछे ढेरी में रख दिया और संन्यासी को जाने को कहा। संन्यासी बड़बड़ाहट करते चला गया। मुझे भी दादा की रीत से आश्चर्य हुआ, किन्तु तुरंत उन्होंने स्पष्टता की। **संन्यासी का धर्म है कि *यदच्छा लाभ संतुष्ट* : यानी कि सहजरूप से जो मिले उससे संतुष्ट रहना। यह धर्म वह चूक गया। हमारा फर्ज है कि हम केवल हमारे धर्म की ही नहीं, किन्तु अन्य के धर्म की रक्षा करनी चाहिए। मैं उसे थोड़े अधिक पैसे दे सका होता, किन्तु वह धर्मभ्रष्ट हुआ। मैंने उसे उत्तेजन दिया कह सकते। ऐसी गहरी समझ देखकर मैं मुग्ध हुआ। मेरी आँख खुल गई।**

पू. मोटा भी स्वजनों कभी भी अपने धर्म में से भ्रष्ट न हो उसकी सतत चौकी करते। प्रेमभाव से पू. मोटा सख़्त भी बन सकते। यह पू. मोटा की अपनी विशिष्टता थी।

भवभूति कवि ने 'उत्तर रामचरित नाटक' में संत-हृदय के विषय में सुंदर शब्दों में वर्णन किया है,-

वज्रादपि कठोराणि मृदुन्ति कुसुमादपि।

लोकात्तराणां हि चेत्तांसि को हि विज्ञातु मर्हति।।

व्रज से भी कठोर और फूल से भी कोमल ऐसे लोकोत्तर पुरुष के चित्त को कौन जान सकता है ? सीताजी को सगर्भावस्था में राम ने वन में भेज दिये थे। फिर अश्वमेघ यज्ञ की आवश्यकता हुई। यज्ञ करनेवाले को पति-पत्नी साथ में बैठना पड़ता है। राम को फिर से विवाह कराने का प्रयत्न हुआ, किन्तु राम ने इनकार किया। तब यज्ञ में साथ बैठनेवाली सीता के स्थान पर सुवर्ण की मूर्ति बिठाई। यह दृश्य जब वाल्मिकी आश्रम में से यज्ञ में शामिल होने के लिए जो लोग आये थे, उन्होंने सीता

की मूर्ति देखी तब उपर्युक्त श्लोक बोला गया था। इस समय सीता तो वाल्मिकी आश्रम में लव-कुश को जन्म दे चुके थे। यज्ञ का आमंत्रण सुनकर सभी को लगा था कि राम दुबारा विवाहित हुए।

बहुत वर्ष पहले 'रामायण' नाम का सुंदर चलचित्र बनाया था। उसमें निर्माता ने भरी रामसभा में लव-कुश के मुख से निम्न पंक्तियाँ मधुर राग से गाई गई थी।

मिथिला की राजकुंवरी की हम कथा सुनाते हैं,
शिवधनुष राम ने तोड़ा मिला चंद्र-चकोर का जोड़ा,
जनकपुरी से तोड़ा नाता, अवधपुरी से जोड़ा।
कोमल थी वह कलि, सुखों में पली। बहुत दु:ख पाये।
सुनकर उनकी कथा, नयन भर आते हैं।

पू. मोटा प्रेम से कठोर हो सकते थे। सर्जन ओपरेशन समय दर्दी पर छुरी चलाये, तब उसमें दर्दी को स्वस्थ करने की कठोर दिखती हुई फिर भी प्रेमपूर्ण कौशल्यपूर्ण तमन्ना होती है। पू. मोटा ने प्रेम को शिल्पी की छेनी के साथ तुलना की है। इस क्षण पर एक ख्याल आता है कि पू. मोटा के कठोर, शिल्पी की छेनी के घाव जैसे प्रेम के प्रसंगों का ही स्वजनों संकलन compilation करें तो एक सुंदर ग्रंथ बन सके। हमारे सच्चे स्वजनरूप सद्गुरु संत हमारे लिए कितना-कितना सहन करते हैं, पीड़ाते हैं, उसका जब हमें प्रत्यक्ष अनुभव होता है, तब ही हमारे कठोर पत्थर जैसे हृदय का परिवर्तन होता है। इससे तो गोस्वामी तुलसीदासजी ने यथार्थ गाया है,-

जानत प्रीत रीत रघुराई,
बिन हेतु जो द्रवे दीन पर।

सचमुच प्रेम करने की रीत तो रघुराय ही जानते हैं। नि:स्वार्थता से दीन के लिए द्रवित होते हैं। हमारी नकारात्मक भावहीन वृत्तियाँ और प्रवृत्तियों से पू. मोटा कितने पीड़ित होते होंगे वह तो उनके साथ के निवासियों को ही ख्याल होगा। पू. मोटा जैसे संतों hyper sensitive होते हैं। उनमें तीव्र और सूक्ष्मतम संवेदनशीलता होती हैं। आप यदि उनके साथ प्रेम के संबंध से जुड़े हुए होते तो आपको बुखार आये तो उनको भी बुखार आये, आपको पेट में दर्द हो तो उनको भी पेट में दर्द हो। आपके सूक्ष्मातिसूक्ष्म फेरफार उनके शरीर पर असर करते हैं। यह जब हम प्रत्यक्षरूप से देखें तब हमें पाठ मिलता है कि हमारे अत्यंत प्रिय

स्वजन हमारे आहार-विहार, वृत्ति-विचार के असर को भोगते हैं और पीड़ित होते है, तब हम सहज रीत से हमारे जीवन में हमारी प्रकृति की निम्न वृत्तियों पर काबू पाने के लिए सक्रिय बनते हैं।

प्रसिद्ध बात है कि परमहंसदेव स्वामी श्रीरामकृष्णदेव के शरीर पर बाहर कोई पशु को मारता तो चोट का दाग निकल आते। पू. मा आनंदमयी के संग में रहते ब्रह्मचारियों के बीच झगड़ा होते एक ने दूसरे के गाल पर तमाचे मारे तो मंडप में बैठे हुए मा के गाल पर चोट के दाग निकल आये थे। एक जापानी साधु पू. मा को नमस्कार करने चाहता था, किन्तु मंडप में भारी भीड़ होने से वह अंदर प्रवेश न कर सके ऐसा था। उससे उसने मंडप के बाहर घुंटनों के बल पड़कर नमस्कार किए। तब पू. मा का शरीर मंडप में जहाँ था, वहाँ नमस्कार स्वीकार करने नीचे झूका था।

पू. गुरु दयालमल्लिक स्वयं एक महान सूफी संत थे। उन्होंने खुद प्रत्यक्ष देखी हुई बात मुझे कही थी। पू. मा विलेपार्ला (मुंबाई) में थे। पू. मल्लिकजी वहाँ से निकले, इससे पू. मा के दर्शन करने पू. मा के मुकाम पर गये। पू. मा उसी समय ऊपर अपने कमरे में चले गये थे। पू. मल्लिकजी थकान दूर करने के लिए थोड़ी देर सभागृह में बैठे। थोड़ी देर हुई पू. मल्लिकजी की इच्छा पू. मा के दर्शन करने की थी। पाँचक मिनट में पू. मा का कमरा खुला और पू. मा सीढ़ी उतरकर नीचे आते दिखे। पू. मल्लिकजी ने दर्शन किये, किन्तु साथ - साथ पू. मा की साड़ी की किनारी में से पानी टपकता भी देखा। यह देखकर पू. मल्लिकजी को आश्चर्य हुआ। वे वहाँ थोड़ी देर रुके। पू. मा तो फिर कमरे में चले गये। किन्तु थोड़ी देर में एक तारवाला आदमी आया। तार में वाराणसी में एक भक्त नहाने जाते डूबते बच गया और बचानेवाले पू. मा थे। अतः पू. मा की कृपा के लिए आभार और कृतज्ञता प्रदर्शित करते समाचार तार में थे। पू. मल्लिकजी ने तार करनेवाले व्यक्ति का पता जान लिया और वहाँ से विदाय हुए। वाराणसी जाने का हुआ, तब उस पते के आधार पर उस सज्जन को मिलने गये और अनुभव का ब्योरा जानने की आतुरता दिखाई। उस सज्जन ने बताया की स्वयं गंगा में डूबता था, तब माने उसे बचाया ऐसा उसे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। पू. मा की साड़ी में से पानी टपकता था और जो पू. मल्लिकजी ने प्रत्यक्ष देखा था, उसका खुलासा मिल गया। संतों की क्या शक्ति होती है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ।

ऐसे प्रसंगों पू. मोटा के स्वजनों के जीवन में बने हुए सुने हैं। पू. मोटा का अंतर्यामीत्व और आवश्यक समय पर स्वजनों के सुख-

दु:ख में सहारा देने की विरल शक्ति के अनुभव हैं। संतों की या कोई भी व्यक्तियों की तुलना करनी यह कुढंगा काम है। Comparisons are always odious. बन सके वहाँ तक तुलना करके एकदूसरे से बढ़िया है, ऐसा दिखाने का प्रयास करना वह व्यर्थ प्रवृत्ति है। प्रभु की इस विराट सृष्टि में कमल कमल है, गुलाब गुलाब है। कमल गुलाब से बढ़िया है या गुलाब अधिक बढ़िया है ऐसा कहना निरर्थक है।

पू. मोटा की एक अपनी लाक्षणिकता वह थी कि चाहे वैसी सामान्य और महान व्यक्ति हो, किन्तु वे कभी किसी के रोब में दबे बिना दिल में लगे वैसा स्पष्ट तुरंत कह देते। हम व्यवहार में जीते व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकते। या तो मूक रहें या प्रभुत्व में बह जाते। पू. मोटा जैसे विरल पुरुष ही अपनी रीत से बरत सकते हैं।

एक बार पू. मोटा गांधी आश्रम में थोड़े समय के लिए आये थे। आश्रम के मेहमानघर में बैठे थे। अनेक स्वजनों, भक्तों वहाँ एकत्रित हुए थे। सद्‌गत मामासाहब फड़के बोल ऊठे :'**मोटा**, आपको कुछ काम में भी मदद करनी चाहिए।' पू. मोटा ने तुरंत नम्रतापूर्वक कहा,'मामासाहब, आपको जो काम ठीक लगा है, वह आप करो और मैं जो करता हूँ, वह मुझे करने दो। एक बुजुर्ग व्यक्ति को इतना नम्र फिर भी स्पष्ट जवाब पू. मोटा ही दे सके। वहाँ बैठे हुए अनेक लोग मूक होकर सुनते रहे। **सच्चे संतों हमेशा स्वयं को सच्चा लगे वही बोलते हैं, अच्छा लगे वैसा नहीं।**

यहाँ मुझे मेरे पू. गुरुदेव कृष्णात्मज महाराज का एक प्रसंग, जिसका मैं प्रत्यक्ष साक्षी था, वह याद आता है। आपश्री सेठ अंबालाल साराभाई के 'रिट्रिट' के एक भाग में उनके ही निमंत्रण से रहे थे। एक दिन दोपहर में अंबालालभाई, सर सी. वी. मेहता को लेकर वहाँ आये। दरवाजे में खड़े रहकर दोनों ने नमस्कार किये और बोले,'महाराजश्री, हम बाद में आयेंगे, अभी समय नहीं है।' महाराजश्री ने जवाब दिया:'अवश्य आप पधारना, किन्तु यहाँ तो किसी को निमंत्रण भी नहीं है और किसी को मना भी नहीं है।' ऐसा जवाब व्यवहार में रही हुई व्यक्ति दे ही नहीं सकती।

पू. मोटा एक बार श्रेयस में मेरे घर पधारे थे। आते ही उन्होंने कहा कि हमें पहले लीनाबहन के पास जाना चाहिए। क्योंकि वे समाज का काम कर रहे हैं। उनको फिर से श्री इन्दुभाई ने उठाकर मोटर में बैठाये और श्री लीनाबहन के पास ले गये। मिलकर वापस आये। दोपहर बाद चार बजते श्री लीनाबहन पू. मोटा के पास आये और बोले,'थोड़े काम में

थीं, इससे आने में विलंब हुआ।' पू. मोटा ने तुरंत जवाब दिया : 'बहन, आना ही चाहिए ऐसा मत रखो। न आ सको तो भी कुछ हरज नहीं।' ऐसा प्रत्याघात पू. मोटा ही दे सकते। खोखला शिष्टाचार के नाम से कोई सजीव व्यक्ति भी अपनी बड़ाई के ख्याल से बरते तो संतपुरुष बिलकुल भी दाब में बहे बिना स्पष्ट शब्दों में सामनेवाली व्यक्ति की बड़ाई के रूमाल को चीर देते हैं। पू. मोटा किसी की भी शह में आते नहीं ऐसा अनेक बार मुझे अनुभव हुआ है।

एक दूसरा ऐसा प्रसंग याद आता है, दक्षिण के सुप्रसिद्ध संत रामदासजी और पू. माताजी कृष्णाबाई को लेकर बंसीधर सेठ आश्रम में आये थे। रामदास स्वामी ने पू. मोटा को मिलने की इच्छा की। इससे उनको नंदुभाई के चबूतरे पर ले गये। पू. मोटा और रामदासजी मिले और बैठे। पू. मोटा का सही नाम से यानी कि चूनीलाल भगत के नाम से सर्व प्रथम प्रसिद्धि देनेवाले रामदासजी थे। उन्होंने उनकी मासिक पत्रिका 'विझन' में **मोटा** के नाम का उल्लेख साथ में इस प्रसंग का वर्णन किया था।

इस समय पर पू. मोटा को किसी जगह जाना था। इससे बंसीधर सेठ ने पू. मोटा को कहा, '**मोटा**, यह मोटर आपकी है, जरूर आप उपयोग कर सकते हो।' पू. मोटा ने तत्काल कहा, सेठ साहब, ऐसा गलत मत बोलो। बोलते पहले विचार करो, मैं यह मोटर उपयोग में नहीं लेने का हूँ। मेरी है, ऐसा मानकर नहीं ले जाने का हूँ। इससे ही आपने ये शब्द कहे हैं, वह मैं जानता हूँ। सेठ स्तब्ध हो गये और रामदासजी ने और माताजी ने मार्मिक हास्य किया। पू. मोटा किसी की भी शह में आये बिना व्यक्ति का दांभिक शिष्टाचार को तोड़ देते। हम व्यवहारु लोग ऐसी हिम्मत नहीं कर सकते और जगत के ऐसे झूठे दंभ को पोषित करते होते हैं।

एक बार यमन के राजा को लेकर गांधी स्मारक के ट्रस्टी कस्तुरभाई सेठ आश्रम दिखाने ले आये थे। उस समय हम शिक्षकों ने बालकों को लेकर उनको कतार में खड़े रखकर एक छोटी बालिका के पास राजा का स्वागत कुमकुम और फूलहार से किया था। उस समय पर पूण्यश्लोक मल्लिकजी भी हमारे साथ खड़े थे। राजा को लेकर सेठ की मोटर आई। राजा को आगे करके सेठ बालकों की कतार पास आकर खड़े रहे। स्वागत करनेवाली बालिका नीची थी, इससे तिलक करने और फूलहार पहनाने में तकलीफ थी। इससे राजा को नीचे झुकना पड़ा और

बालिका ने स्वागत किया। उस समय पर पू. मल्लिकजी बड़े जोर से बोल उठे,'राजा को भी बालक के पास झुकना पड़ता है।' यह सुनकर राजा भी हँस पड़े और सभी विस्मय के साथ हँसते-हँसते सुनते रहे। ऐसी मार्मिक मज़ाक बिलकुल निर्भयता से केवल संत ही कर सकते होते हैं। व्यावहारिक व्यक्तियों को इसमें शिष्टाचार दिखे या ना दिखे उसकी परवा करते नहीं हैं।

संतभक्त के लक्षण गीता में जिस प्रकार वर्णित किये हैं, उसमें अभय को प्रथम स्थान देने में आया है। 'अभयम् सत्त्वसंशुद्धि'(१६/१) आदि। पू. मोटा बारी-बारी से भय के स्थानों यानी कि जहाँ भूत होता है, ऐसे वहम चलते हो वैसे स्थानों में रात को विशेष रहते। अभय विकसित हुए बिना दूसरे कोई गुण व्यक्ति में प्रकट नहीं हो सकते। व्यक्ति सचमुच निर्भय कब हो? उपनिषद में कहा है, *'द्वितीयाद्वै भयं भवति (बृहदारण्यक १.४.२)'* **दोपन** के ख्याल में से भय पैदा होता है। **जहाँ तक सचराचर में सचमुच ब्रह्मतत्त्व रहा हुआ है, उस प्रकार का अनुभव न हो, तहाँ तक व्यक्ति में से भय जाता नहीं। भय एक संस्कार है और भय का सामना किये बिना मनुष्य कभी भी निर्भय नहीं होता।** इससे ही पू. मोटा कुछ साधकों को श्मशान में सोने की आदत डालते। इस तरह पू. मोटा की सच्ची बड़ाई की बाबत में और संत के लक्षणों विषय में कहा गया है और पू. मोटा एक महान आध्यात्मिक क्रांतिकार थे। उसका ख्याल देने का प्रयत्न किया है।

अब समाज को पू. मोटा की विशिष्ट देन के बारे में जो थोड़ा कुछ जानता हूँ, यह कहने का प्रयत्न करता हूँ। हमने देखा कि अभय का गुण विकसित हुए बिना मनुष्य सच्ची महानता नहीं पा सकता। पू. मोटा ने समाज को मृत:प्राय स्थिति में देखा। इससे उसे बैठा करने की सहजवृत्ति जागृत हुई। मुझे ख्याल है कि अमुक किशोरों को भी आधी रात में अंधेरे में दूर तक भेजने का आदेश देते। श्री नंदुभाई के पत्नी को एक उजाड़ कुएँ की खोखली जगह में बैठाकर मौनव्रत का पालन कराया था। नडियाद के आश्रम में बड़े बड़ के पेड़ पर जहाँ एक साँप रहता था, वहाँ रात में बैठने का मुझे सूचन किया था। पू. मोटा की कृपा से वहाँ पूरी रात बैठकर मैंने जोर-जोर से प्रात:काल तक नामस्मरण किया था।

निर्भयता और साहस के गुण विकसित हुए बिना मनुष्य की आध्यात्मिक उत्क्रांति संभवित नहीं है। इससे जब पू. मोटा ने समाज को बैठा करने की प्रवृत्ति शुरू की, तब समाज के जवानों में निर्भयता, साहस और पराक्रम के गुण विकसित हो, उसके लिए तैरने की स्पर्धाओं के लिए

स्नानागार बनावाये। हिम्मत कर बचानेवाले साहसिकों को इनाम देने की योजनाएँ की। समाज को बैठा करने की इस प्रकार की प्रवृत्ति वह पू. मोटा का विशिष्ट प्रदान है। हमारे देश में धर्मशाला, अन्नक्षेत्र, मंदिर आदि बनाने में दान देने की परंपरा है, जो एक रूढि बन गई है। किन्तु पू. मोटा ने इस गड़वाँत दानप्रवृत्ति के प्रवाह को बदल दिया।

पू. मोटा के इस विशिष्ट प्रदान का सही मूल्यांकन भविष्य में होगा। आज तो सद्भावी स्वजनों भी पू. मोटा की ऐसी प्रवृत्ति को आध्यात्मिक गिनने में आशंक हैं। आध्यात्मिकता केवल कषाई वस्त्र पहनने में, आश्रम बाँधने में और भजनकीर्तन करने में समा जाती हो वैसा लोगों का भ्रामक ख्याल है। विष्णुगया के मंदिर में मैंने देखा था कि छोटे मंदिर की दीवारें चौरस तख्तियों से भर गई थी और प्रत्येक तख्ती पर सौ, दो सौ के दाताओं के नाम लिखे थे। ऐसी पारंपरिक अपनी बड़ाई दिखाने के लिए होते दानों के महत्त्व पर पू. मोटा ने अपने विशिष्ट प्रदानों से कुल्हादाघात किया है। समय के अनुरूप प्रवृत्ति के लिए पू. मोटा ने टूटे हुए शरीर से घर-घर फिरकर लाखों के दान का प्रवाह मरा हुआ समाज बैठा हो उसके लिए मोड़ा है।

वल्लभ विद्यानगर विद्यापीठ को ज्ञानगंगोत्री नामक श्रेणी के प्रकाशन के लिए पू. मोटा ने लाखों का दान किया था। पू. मोटा को ऐसा ख्याल था कि अंग्रेजी में एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका जैसी पुस्तकश्रेणी गुजराती भाषा में भी प्रकट होनी चाहिए। इसके लिए भी उन्होंने लाखों का दान गुजरात युनिवर्सिटी को दिया था, किन्तु युनिवर्सिटी वह काम कर न सकी। पू. मोटा के देहावसान के बाद हरि:ॐ आश्रम ने अन्य एक ट्रस्ट गुजरात विश्वकोष ट्रस्ट को दस लाख रुपये देकर शुरू कराया था।

पू. मोटा यों कहते थे कि मनुष्य में जो-जो विशेष गुण और भाव है, वह परमात्मा का ही आविर्भाव है। इससे व्यक्ति के गुण और भाव की योग्य रूप से कदर करना वह परमात्मा की सच्ची भक्ति का एक स्वरूप है। गीताजी में कहा है कि जिसमें-जिसमें गुण और भाव रहे हैं, वह कुछ ऊँचा विभूतिमत् तत्त्व रहा है, वह परमात्मा का ही अंश है। परमात्मा तो आकाश जितना व्यापक होने से उसे नहीं पकड़ सकते। किन्तु परमात्मा के सर्जन में जहाँ विशेष भाव और गुण प्रकट हो, उसकी हार्दिक रूप से, सक्रिय रूप से कदर करते सीखना चाहिये। यह आध्यात्मिक साधना है।

हम प्रसंग-प्रसंग पर पू. मोटा रचित आरती गाते हैं, जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि —

जहाँ जहाँ गुण और भाव

दिल वहाँ मेरा ठहरे... प्रभु (२)

गुण और भाव की भक्ति (२)

मेरे दिल में संचारित करना... ॐ शरणचरण लेना

हम यह आरती गाते हैं सही, किन्तु उसका आचरण करने की दरकार नहीं रख सकते। इसके विरुद्ध किसी के विशेष गुणभाव का हमारे में तेजोद्वेष प्रकट होता है और उसको किस तरह हम नीची श्रेणी में रख दें, ऐसी प्रवृत्ति में हमारा मन ढल जाता है। गुण और भाव की कदर करने का पू. मोटा ने जो सिखाया है, वह उनका एक विशिष्ट प्रदान है।

पू. मोटा की एक विशेषता यह थी कि कोई भी प्रकार की साधना का दावा न करनेवाले सादे, भोले स्वजनों को वे खूब प्रेम करते, परंतु जो साधना का दावा करता हो, उनको तो वे तीर की चोट लगाते। उनकी बिलकुल भी कचाई वे सहन नहीं कर सकते थे।

पू. मोटा तमाकूवाला पान खाते। इससे एक पान में थोड़ा तमाकू ड़ालकर उसका बीड़ा बनाकर उसमें एक लवंग खोंसकर पू. मोटा के पास ले जाने का मैंने एक रिवाज रखा था। पू. मोटा झूले पर बैठे हो और वे उस पान मुँह में रखते और फिर थोड़ी-थोड़ी देर में निकट में ही तुलसी का एक पौधा था, उस पर वे उसकी पिचकारी मारते। यह देखकर एक बहन पू. मोटा को मना करते और कहतीं कि तुलसी पर थूकते नहीं। पू. मोटा अपने स्वजनों के आग्रहों और ग्रंथियों को छुड़ाने के लिए सख़्त हंचकोले देते। इससे वह बहन बैठी हो, तब चाहकर तुलसी पर बार-बार थूकते। जब उनको समझ में आये कि पू. मोटा मेरा आग्रह छुड़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं और टीका करते बंद हो जाय, तब ही पू. मोटा वैसी प्रवृत्ति बंद करते।

एक वयोवृद्ध स्वजन को भाषा की शुद्धि का बहुत ही आग्रह। पू. मोटा उनकी उपस्थिति में पढ़ते हो या बोलते हो, तब विशेष करके भाषा का अशुद्ध प्रयोग करते और वह सज्जन जहाँ तक पू. मोटा की प्रवृत्ति का हार्द न समझे, तहाँ तक टोक किये बिना रह सकते ही नहीं। एक निकट के स्वजन को चौकसी का बहुत आग्रह था। पू. मोटा को बार-बार चौकसी के लिए टोक करते और सच्ची हकीकत, तारीख,

संख्या आदि पेश करते। इस स्वजन का ऐसा आग्रह को तोड़ने के लिए पू. मोटा विशेष करके कितनी ही बातों में चौकसी नहीं रखते। वे स्वजन टोक किये बिना रह सकते ही नहीं। किन्तु पू. मोटा तो अपनी रीत से ही बात पेश करते।

स्वजनों के दुराग्रह, ग्रंथि, गलत समझ आदि को छुड़ाने का पू. मोटा सतत कार्य करते ही रहते थे। ऐसा मैंने देखा है, सुना है। किसी को बहुत बोलने की आदत हो तो सख़्त रीत से उसका बोलना बंद कर देते। कोई आग्रहपूर्वक मूक रहने में अपनी विशिष्टता समझता हो तो उसे पू. मोटा चाह-चाहकर बोलने का सूचन करते, **जिस तरह हमें आँख में गिरी कणिका सहन नहीं हो सकती, उस तरह पू. मोटा अपने स्वजनों के छोटे-बड़े दोष नहीं सह लेते।**

एक बार पू. मोटा जब आश्रम में आये थे, तब अलग-अलग स्वजनों के वहाँ से भोजन की थाली मँगवाते। पू. मोटा जोर से कहते कि बहन, दाल अच्छी बनाना हंअ.... नहीं तो तेरी फज़ीहत उड़ायेगा। यों हँसते-हँसते भी स्वजनों को गढ़ने की सतत प्रवृत्ति पू. मोटा किया करते थे।

पू. मोटा को सद्गुरु के सच्चे लक्षण पूर्णरूप से प्रकट हुए थे। कितनेही संतों को खारा, फीका खिलाओ तो भी एक शब्द बोले बिना, बिलकुल भी टीका किये बिना जैसा हो वैसा खा ले। किन्तु ऐसा करने से स्वजनों की कमी दूर नहीं होती और स्वजनों गढ़ाते नहीं।

पू. मोटा की एक विशिष्टता यह थी कि अपने सच्चे स्वजनों की छोटे से छोटी निर्बलता को नहीं सह लेते। उनकी निर्बलताओं को दूर कराने सतत प्रयत्नशील रहते। इस प्रकार की रीत को वे अपना स्वधर्म मानते। 'श्रीसद्गुरु' ग्रंथ में स्पष्ट बताया है कि सद्गुरु जिसका हाथ पकड़ते हैं, उसे अपने जैसा बनाये बिना चैन नहीं ले सकते। सद्गुरु का यह धर्म है। संस्कृत में एक कहावत् है कि *'इच्छेत् पुत्रात् शिष्यात् पराजयम्।'* मनुष्य को अपने पुत्र और शिष्य से अपना पराजय हो वैसा चाहना चाहिए। पुत्र और शिष्य अपने से सवाया हो वैसी प्रत्येक पिता की और गुरु की छटपटी होती है।

दूसरा एक प्रसंग याद आता है। राजकोट राष्ट्रीय शाला में स्व. ढेबरभाई की उपस्थिति में पू. मोटा का जन्मोत्सव मनाने का था। उस प्रसंग में मैं वहाँ उपस्थित था। जन्मोत्सव समारंभ प्रातःकाल आठ बजे शुरू होने का था। सभी आमंत्रितों सभास्थान पर आकर बैठ गये थे।

श्री ढेबरभाई आधा घंटा विलंब से आये। उनकी अनुपस्थिति में सभा शुरू हो गई थी, वह देखते वे थोड़े खिसियाने पड़ गये। किन्तु पू. मोटा ने तो स्पष्ट शब्दों में समयपालन की बाबत में खुली सभा में टोक की।

पू. हरिबाबा तो स्पष्ट शब्दों में कहते कि जिसे समय का महत्त्व गंभीररूप से समझाया नहीं है, वह आध्यात्मिक साधना के मार्ग पर कभी भी आगे नहीं बढ़ सकेगा। समय वह परमात्मा का ही कालस्वरूप है। समय का अनादर परमात्मा का अनादर है।

अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों को सभा में देर से पहुँचने में, लोगों को प्रतीक्षा कराने में और देर से आकर सभी का ध्यान खिंचने में अपनी बड़ाई दिखाने की आदत होती है। गांधी आश्रम में एक ऐसे वयोवृद्ध, सम्मानीय सेवक थे, जिनको सभास्थान पर देर से पहुँचकर पीछे बैठने की आदत थी। पीछे बैठे इससे सभा के आयोजकों उनको उठाकर आग्रह कर आगे ले जाय और ऊँचे आसन पर बैठाते। सभा के कार्य में खलल हो, लोगों को ध्यान उन पर केन्द्रित हो, उसमें उनको अपना गौरव सँभलता लगता। यह एक प्रकार का अपने महत्त्व का सूक्ष्म अहं है।

पू. मोटा हमेशा गुणातीतपन को संत का आवश्यक लक्षण मानते। सब से खतरनाक 'अहं' सत्त्वगुण या सद्‌गुण का है। कोई सवेरे में जल्दी उठकर नामस्मरण, ध्यान आदि करता हो, किन्तु उसे ऐसा लगे कि घर के दूसरे देर से उठनेवाले लोग पामर हैं, अभी सोये हैं और खुद तो भगवान की कृपा से जल्दी उठकर साधना कर रहा है, ऐसा ख्याल से सभान रहा करता होता है। ऐसा सत्त्वगुण की प्रवृत्ति का भी अभिमान साधक का पतन करता है। इससे ही गुणातीत अवस्था प्राप्त हुए बिना सच्चा संतत्व निर्माण नहीं होता।

मुझे याद है कि हिमालयवासी सद्‌गत नारायणस्वामी को समय के पालन के लिए पू. मोटा ने तत्क्षण टोक की थी। कितनेही ऐसे महात्माओं भी देखे है कि उनके लिये आयोजित सभा में पाँच-दस हजार श्रोताओं की उपस्थिति न हो तो वे चीड़ जाते और उनका अहं घायल होता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने 'चैतन्याष्टक' में बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है-

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना, मानदेन, कीर्तनीयः सदा हरिः।। (३)

'तृण से भी अपने को तुच्छ माननेवाले को, वृक्ष के जितने सहिष्णु होनेवाले को, मान की लेश भी भूख रखे बिना अन्य को मान देनेवाले भक्त को सदा हरि का कीर्तन करते रहना चाहिए।' कितनी विनम्रता!

पू. मोटा में ये लक्षण बहुत ही स्पष्ट अनुभव में आते थे।

आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से विशिष्ट प्रदान यह था कि वे प्रचंड पुरुषार्थ पर भारी झुकाव रखते थे। कृपा का गूढ़ रहस्य समझे बिना केवल कृपा पर ही आधार रखनेवाला साधक पर पू. मोटा अनेक बार बहुत अकुला जाते। वे तो कहते कि,'जो चलता है, उसका मार्ग कटता है।' साधु-संतों के आशीर्वाद और कृपा पर ही आधार रखनेवाला भ्रम में जीते हैं। साधना के मार्ग पर ऊबे बिना, थके बिना सतत प्रयत्न करता है, वही कुछ पा सकता है। कृपा के नाम से जो केवल समय नष्ट कर देता है, वह अपना पाया हुआ जन्म का अवसर गँवा देता है।

प्रीतम कवि ने सच कहा है,-

सिर के बदले में महँगी वस्तु मिलनी नहीं आसान देख,

महा पद पाया वे मरजिया, छोड़कर मन का मैल देख न,

हरि का मारग है, शूर का, कायर का नहीं काम देख न,

अनुभवियों कहते हैं कि हरि की कृपा तो पर्जन्य यानी वर्षा जैसी है। वह सतत बरसती ही रहती है, किन्तु यदि अपना पात्र ही उलटा हो तो उसमें एक बुंद भी पानी नहीं आएगा। **हकीकत में तो हमें शरीर मिला है, हम दिन-रात श्वासोच्छ्वास खिंच रहे हैं, हृदय सतत धड़क रहा है, वही प्रभु की कृपा का प्रत्यक्ष निशान है, साबिती है। हम यह मिले हुए जीवन का उपयोग कैसे करते हैं, मिले हुए जीवन का सही हेतु क्या है, उसका सच्चा भान हुए बिना और भान हुए बाद उस हेतु के प्रकट होने के बाद प्रतिक्षण, प्रतिश्वास उस हेतु के लिए प्रयत्न किए बिना पार नहीं किया जा सकता।**

पू. मा आनंदमयी हमेशा कहते 'जो क्षण जाती है, वह वापस नहीं आती। इसलिए एक क्षण भी व्यर्थ मत जाने दो। हरिकथा ही कथा और सब वृथा व्यथा।' **हरि का नाम वही मात्र सच्चा आधार है, सत्य है, दूसरा सब व्यर्थ व्यथा ही है।**

पू. मोटा के जीवन से हमें यह बात ही सीखने मिलती है। उनका पुरुषार्थ कितना प्रचंड था। कल्पना करते भी हम कंप जाते। नर्मदामैया के धुआँधार प्रपात पीछे की गुफा में बैठकर उन्होंने साधना की थी। अमुक समय केवल मल-मूत्र खाकर साधना की थी। प्रभु का मार्ग ऐसे मरजिया का मार्ग है। मूल बात यह है कि भगवान ही हमारे प्रधान रस का केन्द्र बनना चाहिए। हम व्यवहार में जिस बाबत की लगन लगती है, उसके

पीछे तबाह हो जाते हैं। हमारी लगन के विषय सिवा हमें दूसरी कोई बात में रस नहीं पड़ता। इसी तरह जब भगवान ही हमारा लक्ष बने, तब उसके बाद ही हमारी प्रवृत्ति उस दिशा में अपने-आप होती है।

पू. मोटा इसके लिए गरज शब्द का उपयोग करते थे। किसी भी बाबत की जब गरज प्रकट होती है, तब हम उसके लिए ऊँचेनीचे होते हैं, आकाश-पाताल एक करने प्रयत्नशील बन जाते हैं। मानो कि कोई एक बड़ी नौकरी के लिए या दूसरा कोई लाभ के लिए हमें आज मुंबई जाना हो तो हम दूसरे सब काम एक ओर रखकर तैयार होकर ठीक समय पर स्टेशन पर पहुँचकर गाड़ी पकड़ लेते हैं। यह सब अपने-आप टपाटप करते हैं, क्योंकि हमें गरज लगी हुई है। इस तरह भगवान की गरज जागे, उसके बिना एक क्षण भी न रह सके वैसी तीव्र गरज प्रकट हो, तब साधना के मार्ग पर चढ़ सकते हैं और किसी भी प्रकार के कष्टों, जोखिम उठाने की तैयारी हो। गरज, सच्ची गरज प्रकट हुए बिना इस दिशा में आगे बढ़ ही नहीं सकते वैसा पू. मोटा सतत कहते थे।

बुद्ध के चरित्र के बारे में एच. जी. वेल्स बहुत ही प्रभावपूर्वक भाषा में लिखते हैं:

'Buddha awoke one night like a man who was told that his house was on fire'

'एक रात बुद्ध इस तरह जाग गये कि जैसे किसी आदमी को कहने में आये कि उसके घर को आग लगी है।' ऐसा सुनकर कोई भी आदमी जी बचाने, घर बचाने अनचीता जाग जाय। इसी तरह **जीव** को लगना चाहिए कि जीवन मिला है, यानी कि अवसर मिला है, जीवन किस क्षण पूरा होगा इसका कोई भरोसा नहीं है, तो जीवन का हेतु पार करने में बिना विलंब से प्रयत्नशील होना चाहिए। परीक्षित को पता लगा कि सातवें दिन साँप काटने से उसकी मृत्यु होगी। उसके बाद एक क्षण का भी विलंब किए बिना वे अन्नजल छोड़कर शुकदेवजी के पास श्रीमद् भागवत सुनने बैठ गये।

पू. मोटा की आध्यात्मिक पुरुष की हैसियत से उनकी बड़ी से बड़ी देन मुझे तो यह लगती है कि साधना के लिए सचमुच गरज प्रकट होनी चाहिए। गरज प्रकट हुए बिना तो हम झक्की बैल की तरह ढीले-ढीले चलेंगे। हमें बुद्ध के जैसे अनचीता जाग जाने की आवश्यकता है। 'होता है, चलता है' जैसी वृत्ति साधना में नहीं चलेगी। जैसे भूख, प्यास, कुदरती हाजतों के लिए हम विलंब नहीं सह सकते हैं और करते भी नहीं

हैं, वैसे वैसी ही गरज से इस मार्ग पर चलना है।

पू. मोटा साधना के विषय में जो प्रकार की तमन्ना और मरजियापन की अपेक्षा रखते थे, वह निम्न लिखित श्री ब्रह्मानंद के भजन में बहुत ही तादृश रूप से स्पष्ट होता है। पू. मोटा को समझने यह भजन बहुत उपयोगी हो ऐसा है। पू. मोटा को वह भजन बहुत प्रिय था।

सिर के बदले में नटवर का वरन करें,
पीछे कदम नहीं रखें
होड़-होड़ में युद्ध में न चढ़ना,
अगर चढ़े तो टुकड़े होकर गिरें...

ऐसी तीव्र तमन्ना और तैयारी बिना हरि के मार्ग पर जाना संभव नहीं है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस साँझ होते सिर पटककर आठ-आठ आँसू से कहते, 'हे मा! आज का दिन जिंदगी में से कम हुआ, किन्तु तेरे दर्शन न हुए!' ऐसी तीव्र तमन्ना, गरज साधनामार्ग में आवश्यक है। ऐसा पू. मोटा बार-बार कहते थे और वह आध्यात्मिक क्रांतिकार रूप से पू. मोटा का विशिष्ट प्रदान है। ऐसी साधना, ऐसा कठोर तप सामान्य आदमी के लिए सरल नहीं है। इससे पू. मोटा ने जनसमाज के लिए यह स्वार्थ जागृत हो उसके लिए नये संस्कार जागे और उस मार्ग पर जानेवाले में असाधारण साहस और पराक्रमवृत्ति पैदा हो, उसके लिए ये गुणों के विकास के लिए सक्रिय रीत से योजनाएँ की और इन गुणों का विकास करना ही चाहिए। इससे पू. मोटा की समाज को बैठा करने की यह प्रवृत्ति शत प्रतिशत आध्यात्मिक ही थी।

अनुभवी संतों के पास से जानने मिला है कि अपने को सुरक्षित रखकर इस मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकेंगे। हम पक्के मकान में बैठे हों, दोनों समय भोजन का भरोसा हो और दूसरे छोटे-बड़े शौक पूरे करने के लिए व्यवस्था हो, ठीक-ठीक बैंक बेलेन्स का सहारा हो और हम कुरसी पर बैठे-बैठे परमात्मा को पाने का प्रयत्न करें बहुत अंश में हास्यास्पद है। तैरना सीखना हो तो पानी में कूदना पड़े। भक्त कवि प्रीतम ने सच कहा है कि—

मरण के सामने युद्ध में जो मुट्ठी भरता है,
वह दिल का दूध पाता है।
किनारे खड़े हुए तमाशा देखते,
वे कौड़ी भी नहीं देख पाते।

पू. मोटा का मार्ग मरजिया का था। सच्चे संतों आप कैसी और कितनी साधना करते हो, उससे प्रभावित नहीं हो जाते। किन्तु आपकी साधना के परिणाम से प्रकृति पर विजय पाकर संत के सच्चे लक्षण प्रकट हो, तब ही वे प्रसन्नता पाते हैं। साधना दिखावा के लिए नहीं होती। इससे कई बार ऐसा देखने में आता है कि संतों का संग, साधना की चेष्टा साधक को ऊँचे ले जाने के बदले नीचे पटकती है। पू. मोटा हमेशा कहते कि साधना की मापपट्टी लक्षण प्रकट हो वह है।

एक बार एक ऊँची कोटि के साधु के साथ रेलवे में प्रवास करने का प्रसंग बना था। हमारे साथ एक भाई था। वह स्नानघर में जाकर हाथ, मुँह धोकर सामने के आसन पर बैठकर माला करने लगा। उस संतपुरुष ने मुझे निकट बुलाकर हँसते-हँसते कान में कहा कि,'यह सामने देख, यह नरक में गिरने का मार्ग है।' उस संतपुरुष का कहने का मर्म यह था कि साधना दिखावा करना नहीं होता। स्त्री-पुरुष का प्रेम-संबंध जैसे जाहिर में अच्छा नहीं लगता वैसे परमात्मा के साथ का संबंध हमेशा गुप्त ही रहना चाहिए। शास्त्र में तो यहाँ तक कहा है कि आध्यात्मिक अनुभव *'मातृयोनिवत गोप्यं'* यानी कि माता की योनी की तरह उसे गुप्त रखना चाहिए।

एक राजा-रानी थे। रानी बहुत ही धार्मिक वृत्ति की थी। व्रत, जप, तप, अनुष्ठान करती। राजा उसमें बिलकुल रस नहीं लेता। इससे रानी को बहुत दु:ख लगता था। पति भी अपने रास्ते चले वैसी उसकी तीव्र आतुरता थी। एक रात में निद्रा में करवट बदलते राजा से बोला गया, 'हे राम!' रानी ने सुना और वह राजी हो गई और अपने को धन्य मानने लगी। राजा जब जागे तब रानी को बहुत प्रसन्न देखा। राजा ने कारण पूछा, तब रानी ने कहा कि आज रात में निद्रा में करवट बदलते आपके मुख से 'हे राम' शब्द निकलते सूना। वह मेरी प्रसन्नता का कारण है। लम्बे समय की मेरी आतुरता पूरी हो गई है। राजा बोल पड़े क्या सचमुच राम मेरे मुख से निकल गए? इतना बोलकर राजा ने अंतिम श्वास लिया। यह कहानी सच्ची या काल्पनिक, किन्तु परमात्मा के साथ जीव का संबंध गुप्त रखने जैसा है। उसका बाहर दिखावा हो तो सूक्ष्मरूप से अहंकार बढ़े बिना नहीं रहता और जीवन का पतन होता है।

पू. मोटा ने आध्यात्मिक साधना की परीक्षा प्रकृति के रूपान्तर में मानी है। और इस मार्ग पर जाने के लिए गहरी गरज पैदा

करने की आवश्यकता और अपार साहस और पराक्रमवृत्ति आवश्यक है, उस पर भार दिया है। कृपा के बदले पुरुषार्थ पर प्रबल भार दिया है, वह आध्यात्मिक क्रांतिकारी संत रूप में पू. मोटा का विशिष्ट प्रदान है। इसलिए ही मरा हुआ समाज आध्यात्मिक साधना के मार्ग पर मुड़ सके, उसके लिए समाज में खमीर, वीरता और साहस के गुण प्रकट हो, उसके लिए खास योजनाएँ की हैं। अभी समाज जैसा दिखता है, वैसा प्राय: आध्यात्मिक साधना के मार्ग पर जाने के लिए लायक नहीं है वैसा हिम्मत से स्पष्ट कहते पू. मोटा कभी भी हिचके नहीं है।

समाज के उत्थान के लिए पू. मोटा ने अलग—अलग योजनाएँ की। उसके लिए लोगों के पास दान की भिक्षा माँगी, तब भी उनमें एक याचक की पामरता दिखने में न आती थी। वे तो स्पष्ट रूप से ऊँची आवाज से संबोधन करते,' भाइयों और बहनों, आप सब आये तो यह सब सुनकर कपड़े झाड़कर चले नहीं जाना। मैं यह मेरे लिए नहीं माँगता हूँ, आप सभी के लिए, समाज के लिए भिक्षा माँग रहा हूँ। ' ऐसा ऊँचे से संबोधन करते-करते पू. मोटा की आँखे सजल हो जाती और यदि हमारे में समझ हो, दिल हो तो समाज के उत्थान के लिए इतनी गहरी संवेदना थी, उसका हमें भान होता है। और पू. मोटा की हाँक का जवाब देने का दिल हुए बिना नहीं रहता। इस तरह समाज के पास से लाखों का दान पाया और समाज को ही भिन्न रूप में लौटा दिया। संत पुरुष की हैसियत से पू. मोटा की यह विशेषता बेजोड़ थी।

वे बड़े महात्माओं और मंडलेश्वरों की उपस्थिति में भी बिलकुल भी संकोच बिना कह सकते थे कि समाज जागेगा तो आपके ये ठाट-बाट और भोगविलास को चलने नहीं देगा। ऐसा हिम्मत से कहनेवाले स्वामी विवेकानंद और दयानंद के बाद किसी साधु को सुना नहीं है।

पू. मोटा कहते कि स्वार्थ सिखाना नहीं पड़ता है। स्वार्थ तो मनुष्य सहज रूप से ही साधा करता होता है। परमार्थ सिखाना पड़ता है। अकेले स्वार्थ में रचेपचे रहकर कोई आध्यात्मिक पंथ में आगे नहीं बढ़ सकता। **भगवान को पाना वही सच्चा स्वार्थ है और उसके लिए भगीरथ पुरुषार्थ की आवश्यकता है।** हम थाली भरकर भोजन खाते हों, तब पड़ोश में कोई भूखा सोया हो तो कौर हमारे गले उतरना नहीं चाहिए। व्यक्ति मात्र में थोड़े-बहुत अंश में उत्क्रांत हुआ हमारे प्राण का आधार

परमात्मा बैठा हुआ है। उसे भूख में और दु:ख में देखकर हमारे दिल में आग लगनी चाहिए। हमारे रोट में से टुकड़ा उस भूखे आदमी के पेट में जाना चाहिए। **समाज के लिए यदि ऐसी संवेदनशीलता और भाव न जागे तो हमें आध्यात्मिक साधना का नाम देने का भी अधिकार नहीं है।**

सूफी संतों के जीवन का अवलोकन करने से देखने मिलता है कि वे व्यक्तिमात्र को खूब प्रेम और आदर से देखते होते हैं। फिर वह व्यक्ति भले ही किसी भी कक्षा की हो। फिर वह झाड़ूवाला हो, चपरासी हो या भिखारी हो। उसे मौका मिले तो वह भी बुद्ध, ईसु और गांधीजी की तरह महान हो सकता है। इससे सूफी संतों व्यक्तिमात्र को पूरे प्रेम से आदर करने का सिखाते हैं। पू. मोटा का दिल अपने स्वजनों के लिए सतत रोता हुआ मैंने प्रत्यक्ष देखा है।

किसी भी साधना का मर्म प्रेम का उदय हो वह है। हृदय का गहरा प्रेम जागे बिना जीवन में सच्चे गुण प्रकट होने असंभवित है। त्याग, बलिदान, नि:स्वार्थता, निराभिमानता हृदय में प्रेम का उदय हुए बिना संभव नहीं है। दुन्यवी लोगों में भी प्रेम प्रचंड खमीर प्रकट करता है। ब्रिटन के राजा एडवर्ड आठवें ने एक सामान्य स्त्री के लिए प्रेम के कारण अपनी शहेनशाहत का त्याग किया वह हम सब ने जाना है। चैतन्य महाप्रभु को किसी ने पूछा कि कृष्ण के लिए प्रेम का उदय किस तरह हो ? तब उन्होंने तुरंत ही जवाब दिया,'गोपी के अनुगत हो जाओ यानी कि गोपी को अनुसरो। इसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि जिनको भगवान के लिए प्रेम प्रकट हुआ है, ऐसे संतों और भक्तों के पीछे चलो। पू. मोटा ऐसे महान संत थे। वे स्पष्टरूप से जोर से कहते, '**जो किसी को इस शरीर के लिए सच्चा प्रेम प्रकट होगा, उसे फिर कुछ ही करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।**' इसका अर्थ यह है कि यदि पू. मोटा के लिए सचमुच सच्चा प्रेम हमारे हृदय में जागेगा या जागा होगा तो उनकी प्रचंड साधना का सहारा हमें मिलते रहेगा। पू. मोटा के सच्चे स्वजनों को थोड़े—बहुत अंश में ऐसा अनुभव हुए बिना रहेगा नहीं।

पू. मोटा के जीवन की अपेक्षा उनके जीवन का अंत अधिक से रोमहर्षण है। 'मैं स्वेच्छा से शरीर छोड़ दूँगा।' ऐसा पहले से जाहिर करने के बाद जिस दिन उन्होंने चाहा था, उस दिन उन्होंने शरीर छोड़ दिया। इस प्रसंग में कितनी विशेषता रही हुई है, वह हमें पूर्ण समझ में नहीं

आया है। हम देखते हैं कि संतों—महात्माओं के देहावसान होते हैं, उनके देह को खास विमान—मार्ग से उनके स्थान पर ले आते हैं। हजारों लोग उनकी अंतिम क्रिया में भाग लेते हैं। पू. मोटा ने विशिष्ट रीत से इसके विरुद्ध ही किया। अंतिम समय पर जो छ व्यक्ति उनके पास थे, उनके सिवाय दूसरे किसी को भी खबर देने की उन्होंने सख़्त मना की थी। फाजलपुर मुकाम पर मही नदी में उनकी भस्म बहा देने के बाद ही उनके देहावसान के समाचार लोगों के कान पर पहुँचे वैसी सख़्त सूचना दी थी।

सामान्य रूप से यदि पू. मोटा के देहावसान की खबर दी होती तो कदाचित् पूरा गुजरात उनकी अंतिम क्रिया में भाग लेने आया होता। पू. मोटा ने जीवन और मरण द्वारा अपनी विशेषता का लोगों को भान कराया। **गहराई से देखें तो ऐसी विशिष्ट गुणवत्तायुक्त कोई संत अभी देखने में नहीं आया है।**

अंत काल में उन्होंने एक वसीयतनामा लिख रखा था कि 'मेरे देहावसान के समय पर लोग जो कुछ पैसे प्रेम से दे, उसका उपयोग गाँवो में शाला के कमरे निर्माण करने में करना।' हमें कल्पना नहीं आती कि पिछड़े गाँवों के गरीब बालकों पाँच, छ, सात वर्ष की उमर में पढ़ने के लिए दो-दो, तीन-तीन मील रोज ऐसे दूर-दूर जाना होता हो। तो हमारे दिल में कितनी वेदना प्रकट होगी? पू. मोटा इस दृष्टि से पिछड़े हुए गाँवों के छोटे-छोटे बालकों के सच्चे बाप थे। ऐसा उनकी अंतिम इच्छा पर से नहीं दिखता? अन्य किसी प्रकार के दान से यह दान अप्रतिम नहीं लगता? छोटे गरीब बालकों में रहा हुआ परमात्मा पढ़ने के लिए रोज दो-दो, चार-चार मील की खेप करे वह पू. मोटा से सहन न हो सका। क्योंकि परमात्मा ही उनका प्राण था।

अपने प्यारे भगवान को रोज की इस खेप में से उबारने उन्होंने अंतिम इच्छा व्यक्त की थी। यह केवल इच्छा ही न थी, किन्तु ऐसा प्रबल संकल्प था कि उनके देहावसान के बाद भी दान का अविरत प्रवाह चालू रहा और अभी भी रहा है। गुजरात के गाँवों में शाला के हजारों कमरे बन चुके हैं। पू. मोटा ने अपने इँट-चूने के स्मारक के लिए स्पष्ट मना की थी। पू. मोटा के इस विशिष्ट प्रदान को पूर्ण समझने जितना अभी हमारा हृदय जागा नहीं है। जिस दिन हमारा हृदय जागेगा, तब हमें पू. मोटा की सच्ची महानता का भान होगा और हमारा शरीर मुग्ध-भाव से पहाड़ जैसा स्थिर हो जाएगा और हमारी आँखे गंगोत्री और जन्मोत्री बनकर भाव और करुणा के नीर बहायेगी।

पू. मोटा के देहावसान के बाद आज आठ-आठ वर्ष हुए, किन्तु अभी उनको कोई भूल न सका है। मौनमंदिरों में अविरतरूप से 'हरि:ॐ' के नामस्मरण की गंगधारा सतत बहा करती है। पू. मोटा के हरि:ॐ सत्संग मंडल अहमदाबाद ने पू. मोटा का सच्चा स्मारक निर्माण करने का अविरत प्रयत्न चालू रखा है। पू. मोटा का विशिष्ट मृत्यु-संदेश को घरघर में प्रसारित कर मृत स्वजन की सच्ची सेवा करने का नया संस्कार पैदा किया है। अज्ञात स्थलों से अभी भी दान का अस्खलित प्रवाह चालू ही रहा है। इन सभी प्रवृत्तियों के पीछे पू. मोटा का सत्य संकल्प अभी भी जीवंतरूप से, प्राणवान रूप से प्रेरणा देता रहा है।

पू. मोटा ने शरीर को छोड़ा है, किन्तु स्वजनों को छोड़े नहीं हैं। ऐसा दृढ़ विश्वास पू. मोटा की कृपा से सभी के हृदय में जीता रहे और प्रेरणा देता रहे वही पू. मोटा को विनम्र प्रार्थना। भगवान बुद्ध को एक महान क्रांतिकारी महापुरुष के रूप में इतिहासकारों मानते हैं। उन्होंने उनके समय में प्रचलित संस्कृत भाषा के बदले लोगों की भाषा में अपना उपदेश दिया और त्रिपटक जैसे ग्रंथ लोकभाषा में यानी पाली भाषा में लिखे।

इस दृष्टि से सोचते पू. मोटा को भी भगवान बुद्ध की तरह एक महान क्रांतिकारी संत पुरुष मान सकते हैं। गुजरात में प्रचलित सामाजिक प्रसंगों जैसे कि विवाह, जनेऊँ, मकान का वास्तु आदि विधियाँ गुजराती भाषा में विधि के हेतु, रहस्य और उसके आध्यात्मिक हार्द के साथ प्रचलित किया है। समाज में बहुत लोग अब पू. मोटा रचित विधियाँ अनुसार अपने प्रसंगों आयोजित करने के लिए उत्साह रखते हैं। ये विधियाँ सादी, समझ सके वैसी और उसका महत्त्व भी हृदय में बैठ सके और खूब सस्ते में प्रसंग निपट जाय वैसी होने से देशकाल के अनुरूप है। पू. मोटा की यह प्रवृत्ति सचमुच उनका एक विशिष्ट प्रदान है। समकालिन संतों में किसी को इस बाबत की कल्पना नहीं आयी है।

संस्कृत भाषा जब गिने-गिनाये आदमी समझ सकते हैं और धीरे-धीरे शिक्षण में भी उसका स्थान गौण बनने लगा है, तब जीवन के महत्त्व के प्रसंगों की विधियाँ कोई पुरोहित संस्कृत में कराये जो यजमान तो बिलकुल न समझे ऐसी प्रचलित रूढ़ि को पू. मोटा ने ललकारा और सादी, सरल गुजराती भाषा में विधि का मर्म और हेतु समझ सके उसके लिए विधियाँ तैयार की हैं और प्रचलित की हैं, वह एक महान क्रांतिकारी कार्य गिन सकते हैं।

बहुत बार नामस्मरण के अनुष्ठान के बाद यज्ञ-विधि करने में आती हैं और उस विधि में अग्नि को प्रकट करना और अग्नि में जप की आहुति देना वे सब क्रियाएँ सरल गुजराती अनुष्टुप श्लोकों में हैं।

यज्ञ में अग्नि किस लिए प्रकट करने में आता है, उसका मर्म यज्ञ करनेवाला और करानेवाला कदाचित् ही समझता हो। फिर, कितनेही आधुनिक सुधरे हुए आदमियों को ऐसा भी लगे कि अग्नि को प्रकट करना और उसमें कुछ होमना वह ईंधन और अन्न का दुर्व्यय है और समय और शक्ति का दुरुपयोग है। **हकीकत में अग्नि वह तो आध्यात्मिक अग्नि का प्रतीक है। आध्यात्मिक अग्नि प्रकट हुए बिना कोई जीव जीवनविकास के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता है। यह आध्यात्मिक अग्नि क्या है, उसे सादी भाषा में समझना हो तो ऐसा कह सकते हैं कि जिस अग्नि ने सोक्रेटिस और मीरां को विष पीने की शक्ति दी, ईसु को क्रोस पर चढ़ने का जोश दिया, गांधीजी को सत्य-अहिंसा के प्रचार के लिए बंदूक की गोलियाँ खाने की शक्ति दी, उस अग्नि को आध्यात्मिक अग्नि कहते हैं। इस आध्यात्मिक अग्नि में मनुष्य को अपनी निर्बलताएँ, अहंकार, अमानुषि वृत्तिओं का होम करना होता है।**

इस प्रकार का आध्यात्मिक होम का प्रतीक अग्नि में कोई द्रव्य होमने के लिए यज्ञ है। इस प्रकार का यज्ञ को भी अग्नि प्रकट करने से लेकर आहुति देने तक की विधि को सादी-सरल भाषा में समझाई है। उस तरह मृत्यु के प्रसंग पर पू. मोटा के मृत्यु-संदेश और प्रार्थना लोकप्रिय बने हैं। इसी तरह हमारी प्रसंग-प्रसंग की विधि पू. मोटा रचित विधि अनुसार होती जाय वह बहुत संभवित लगता है। ये विधियाँ सरल गुजराती भाषा में हैं और उनके मर्म और अर्थ समझ में आते हैं। इसके उपरांत वे सादी और सस्ती भी हैं। जो आज की प्रचंड़ महँगाई में आशीर्वाद रूप बन जाएं। पू. मोटा का संकल्प सिद्ध हुए बिना नहीं रहेगा वैसा मुझे तो विश्वास है।

पू. मोटा हमेशा कहते कि परिस्थिति में से छटकने का कभी प्रयत्न नहीं करना। क्योंकि परिस्थिति वही जीव के विकास के लिए सच्ची पाठशाला है। जो साधक परिस्थिति से ऊबकर उसका त्याग करके छटकता है, वह जहाँ जाय वहाँ वैसी ही परिस्थिति निर्माण करता है। **अनुभवी संतों के मत अनुसार जीव जो परिस्थिति में जन्म लेता है,**

वह परिस्थिति उसके पहले के जीवन में स्वयं ही चाही हुई होती है। परिस्थिति का उपभोग नहीं, उपयोग कर लेने की कला सीख लेनी चाहिए। उपयोग वह भी लघु प्रकार का योग ही है। नाशवंत वस्तुओं का उपयोग हो सके और अविनाशी चेतन तत्त्व के साथ योग हो सके। अविनाशी तत्त्व के साथ का योग अटूट रहता है।

एक प्रसंग में मैं सोया था, उस शय्या के पास पू. मोटा आधी रात में आकर बैठ गए और मैं जाग गया, तब आँख में आँसू के साथ प्रेम से कहा था 'भई, संसार से कभी ऊबना मत।' एक आध्यात्मिक संत पुरुष की हैसियत से मुझे यह बहुत बड़ा प्रदान लगता है। सामान्य रूप से साधु-संतों उनके पास जानेवाले का brain washing करके उनको वैराग्य का बोध दे देकर संसार से मुक्त कराने का प्रयत्न करने में ही अपनी महत्ता समझते हैं। पू. मोटा इस बाबत में विशिष्ट थे। उनकी प्रेमयुक्त सूचना आज समझ में आती है कि संसार में कदम कदम पर परीक्षा होती रहती है। आपके अहं पर आघात होते रहते हैं। फिर भी स्वयं निर्माण किये हुए कुटुंब की व्यक्तियों की तरफ प्रेम से सभी फर्ज़ अदा करनी पड़ती हैं। **विराग का सच्चा अर्थ है विशेष राग।** इससे ही भागवत् के प्रसिद्ध 'गोपीगीत' में गोपियों ने गाया है,-

इतररागविस्मारणं नृणां।

वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्।। ४।।

गोपियाँ कहती हैं,'हे वीर। दूसरे रागों को भूलानेवाला तू तेरा अधरामृत (अपार्थिव अमृत) तू हमें दे।' जब मनुष्य के जीवन में प्रेम का उदय होता हैं, तब अपनी प्रिय वस्तु के सिवा अन्य कोई वस्तु या व्यक्ति पर राग नहीं रहता है।

पू. मोटा ने अनेक बार मुझे कहा था, सच्ची आध्यात्मिक स्थिति के तीन लक्षण हैं। सच्चा आत्मसाक्षात्कारी और प्रकृति के रूपांतर पाया हुआ पुरुष धन, सत्ता और स्त्री से ललचा नहीं जाता है। ये लक्षण केवल गुरुकृपा से हृदय में प्रकट हुए प्रचंड प्रेम बिना प्रकट होने संभव नहीं है। कोई माता अपना प्रिय बालक को करोड़ों रुपये मिले तो भी बेचेगी नहीं। कोई आदमी उसे कितना भी महान स्थान प्राप्त होने का हो, किन्तु वह अपने सच्चे प्रियजन का त्याग नहीं कर सकता।

वैष्णव संतों कहते हैं कि सर्वोच्च रस प्राप्त हो, तब ही मनुष्य निम्न, अधम रस से बिना प्रयत्न ही मुक्त होता है। यह मार्ग ही रचनात्मक

मार्ग positive मार्ग है।

पू. मोटा कहते कि साधना में कठिन साधना प्राण के शमन की है। प्राण की भूख है, निद्रा, आहार और मैथुन। प्राण के शमन के लिए गुरु की कृपा बिना दूसरा कोई साधन नहीं है। जप, तप, व्रत आदि साधन प्राण के शमन के लिए अधूरे पड़ते हैं। प्राण का शमन न हो, तब तक कोई भी साधक पूर्ण नहीं हो सकता है। सद्‌गुरु की कृपा से सुषुप्त चेतन जाग उठे, वहाँ से प्रकृति का रूपांतर हो और प्राण का शमन हो, तब तक की अवधि भारी खतरनाक है।

इस अवधि में साधक की निर्बलताएँ बहकती हैं और अनेक साधकों का पतन होता है। एक सूफी संत ने गाया है—

होंठ पर स्पर्श किया जाम, वहाँ बहक गये कुछ बेघर।

पीर होकर पयगाम दे, प्याली तो अभी हज़म नहीं हुई।।

श्रीसद्‌गुरु की कृपा से चेतन जागे, वह तो मात्र योग की नींव है। जागे हुए चेतन के प्रभाव से प्रकृति का रूपांतर हो, वहाँ तक साधक को अत्यंत सावधान रहने की आवश्यकता है। अनेक लोगों की ऐसी समझ होती है कि सुषुप्त चेतन जाग उठे इससे स्वयं पूर्ण हो गये। इससे ही पू. हरिबाबा कहते कि साधक को कभी भी अंकुशरहित होने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

पू. मोटा एक सचमुच अनुभवी संतपुरुष थे। वे साधनाजीवन की सूक्ष्मतम आँट-साँट समझ सकते थे। यों गरजवान साधक को कदम-कदम पर मार्गदर्शन देते और उनकी सतत चौकी करके उनकी रक्षा करते थे।

पू. मल्लिकजी ऐसा बार-बार कहते कि हमारा सच्चा गुरु प्रेम है। सूफियों प्रेम को ही परमात्मा मानते हैं। कोई माता उसके बालक को खेलाती हो और दिल में भाव उमड़ता है, तब बोल उठतीं है, 'मेरे लाल, तेरे पर मैं फिदा हो जाऊँ, मर जाऊँ। यह दिखाता है **प्रेम ही मनुष्य को मृत्यु पर विजय पाने की शक्ति देता है। मृत्यु में ही सच्चा जीवन रहा हुआ है। शरीर का छूटना वह मृत्यु नहीं है। जो जीतेजी मर सकता है यानी कि 'अहं' से मुक्त होता है, वही सच्चा जीवन पा सकता है। इस दृष्टि से देखने से मृत्यु वही सच्चा जीवन है। 'जीतेजी मर जाना'।**

'पलपल मैं मर रहा हूँ, मैं मरनेवाला नहीं हूँ।'

प्रेम ही यह शक्ति देता है। पू. मोटा ने प्रेम पर दो ग्रंथ लिखे हैं, 'प्रेम' और 'पुनीत प्रेमगाथा' और प्रेम का महत्त्व समझाया है। इसके उपरांत भी उनके रोमरोम से प्रकट होता प्रेम जिसने अनुभव किया है, वह कभी उनको और उनके जीवनकार्य को, उनके उपदेश को नहीं भूल सकेगा। आध्यात्मिक पथ पर चलनेवाले के वे पलपल के साथी, मार्गदर्शक और चौकीदार थे। आध्यात्मिक संत के रूप में ऐसे क्रांतदर्शी संत कदाचित् ही देखने में आते हैं।

।। हरि:ॐ ।।

आरती

ॐ शरणचरण लीजिए, प्रभु शरणचरण लीजिए
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए...
ॐ शरणचरण.

मन-वाणी के भाव आचरण में उतरें प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें...
ॐ शरणचरण.

सभी स्वजनों के साथ, दिल में सद्‌भाव जगें, प्रभु (२)
भले अपमान हुए हो (२) तब भी भाव बढ़े...
ॐ शरणचरण.

हीन प्रकार की वृत्ति; ऊर्ध्वगमन करने, प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें (२) चरणशरण पाने...
ॐ शरणचरण.

मन के सकल विचार, प्राण की वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हो...
ॐ शरणचरण.

जैसे भी हो प्रभु, वैसे ही दिखें, प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें...
ॐ शरणचरण.

दिल में कुछ भरा हो, उससे सब उल्टा, प्रभु (२)
मुझसे कभी न हो (२) ऐसी मति दें...
ॐ शरणचरण.

जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहाँ दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचरित करें...
ॐ शरणचरण.

मन, मति, प्राण प्रभु । तुम्हारे भाव में तल्लीन रहे, प्रभु (२)
दिल में तेरी भक्ति की (२) लहरें उछलें...
ॐ शरणचरण.

- मोटा

।। हरि:ॐ ।।

साधना-मर्म

१. मुख से या मन में जागृत रूप से जप : साथ ही हृदय-प्रदेश पर ध्यान तथा चेतना के साथ चिंतन सह भावनात्मक भाव का रटन।

२. प्रत्येक क्षण में सतत समर्पण : अच्छे तथा बुरे दोनों का।

३. साक्षीभाव, जागृति, विचारों की श्रृंखला न जोड़ें।

४. हो सके उतना अधिक वाचिक और मानसिक मौन रखें, अभ्यस्त हो, अत्यधिक शरणभाव से जीवन में चेतनापूर्वक जागृति को व्यवस्थित करें।

५. आग्रह प्रभु-चिंतन के अलावा सभी आग्रहों को छोड़ें, नम्रता रखें, शून्य होने का ध्येय रखें।

६. बहुत भावपूर्ण हृदयस्थ होकर आर्द्र और आर्तभाव से प्रार्थना करें, भगवान को सभी सुख-दु:ख बतलाते रहें, उनके साथ आत्मनिवेदन द्वारा बहुत गहरा व्यक्तिगत संबंध स्थापित करें, मन में कुछ भी विचार न आने दें। खाली रहो।

७. आ पड़ते काम प्रभु के समझो। जरा भी कचवाट बिना उसे खूब प्रेमपूर्वक करो। प्रत्येक प्रसंग, घटना हमारे कल्याण के लिए ही है और प्रत्येक प्रवृत्ति हमारे अपने विकास के लिए होनी चाहिए। प्रत्येक प्रसंग के पीछे प्रभु का गूढ़, शुभ संकेत रहा हुआ है।

८. आत्मलक्षी-अंतर्मुखी बनें, मात्र अपनी दुनिया में रहें । जान बुझकर अपने आपको न उलझने दें।

९. अन्य की सेवा ही प्रभु सेवा समझें, सेवा लेनेवाले, सेवा देनेवाले पर, सेवा करने का अवसर देकर उपकार करते हैं। राम ने दिया है और राम को दे रहे हैं, वहाँ मेरा-मेरा कहाँ रहा ? तुम्हारा इस जगत में है क्या ?

१०. प्रत्येक कर्म, प्रत्येक बातचीत, व्यवहार हमारे ध्येय को गति दे ऐसे उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर करें। पढ़ते-लिखते समय और प्रत्येक कर्म करते समय भाव की स्मरणधारणाओं का अभ्यास करते रहें।

११. वृत्ति का मूल खोजें, उसका पृथक्करण करें। उसमें खोये बिना, उसका तटस्थतापूर्वक और स्वस्थतापूर्वक निरीक्षण करें।

१२. प्रभु की प्रत्येक कला, सौन्दर्य, रम्यता, विशुद्धता आदि प्रसादिओं में रहे हुए भाव का, उसके-उसके अनुरूप भाव का, हमारे में तब अवतरण हो ऐसी प्रार्थना करें।

१३. ऊर्मि, आवेश और प्रेमभाव को ऐसे ही बह न जाने दें, एवं उसमें मिश्रित मत भी हो जाना। उसका साधना में उपयोग करें, तटस्थता बनाए रखें।

१४. खाते और पानी पीते हुए जीवन में चेतनशक्ति के अवतरणभाव की प्रार्थना करें। शौच, पेशाब आदि क्रियाओं के समय विकारों, कमजोरियों इत्यादि के विसर्जनभाव की प्रार्थना करें।

१५. स्थूल का ख्याल त्यागकर सूक्ष्म तत्त्व को ध्यान में रखें। वृत्ति की शुद्धि करें, भाव की वृद्धि करें।

१६. प्रभु सचराचर हैं। '*आत्मवत् सर्वभूतेषु*' की भावना विकसित करें।

१७. प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु के उज्ज्वल पक्ष को देखो। किसी के भी काजी न बनें, किसी भी विषय पर जल्दी से अभिप्राय न दें, वाद-विवाद न करें, अपना आग्रह न रखें, दूसरों में शुभ हेतुओं का आरोपण करें, मानसिक और सार्वत्रिक उदारता जीवन में प्रगट करें, अत्यधिक प्रेमभाव बनाए रखें, प्रकृति का रूपान्तर करना है, उसे लक्ष में रखकर प्रकृतिवश होनेवालें कर्मों को वश न होकर आगे बढ़े, फल की आसक्ति त्यागें, स्वयं पर होते अन्यायों, आ पड़ते दु:खों आदि का मूल हम में ही है, ऐसा दृढ़तापूर्वक मानें, गुरु में प्रेमभक्तिभाव दृढ़ बनाये रखें। अभीप्सा इनकार और समर्पण का त्रिवेणीसंगम उद्‌भव करो, सदा प्रसन्नता बनाए रखें, कृपा और पुरुषार्थ के युगल को जीवन में उतारें, प्रत्येक कर्म के आदि, मध्य और अंत में प्रभु की स्मृति बनाए रखें, मन को नि:स्पंद करें, रागद्वेष निर्मूल करने की जागृति रखें, हुए आध्यात्मिक अनुभवों को नित्य के जीवन में आचरण में लावें, कहीं भी किसी भी दायित्व से भागें नहीं, जो भी प्रभु-इच्छा से प्राप्त हो, उसे प्रभुप्रसाद समझकर प्रसन्नता से सत्कार कर लें। कहीं भी किसी से तुलना या ईर्ष्या न करें, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति यह मन का भ्रम है, जीवन-साधना के लिए सब कुछ सानुकूल ही होता है; प्रभुमय—उनके मूक यंत्र—होने की ही बस एक उत्तेजना अब जीवन में रखें।

१८. कर्म में, कर्म का महत्त्व नहीं है, परंतु जीवन के भाव का सतत एकसमान, सजग चिंतन रहा करे, यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। ऐसा सजग अध्ययन कर्म करते हुए प्रत्येक क्षण में बनाए रखें।

- श्रीमोटा

।। हरि:ॐ ।।

पूज्य श्रीमोटा के जीवन का परिचय

जन्म	: ता. ४-९-१८९८ भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी, विक्रम संवत १९५४
स्थान	: सावली, जिला - वडोदरा (गुजरात)।
नाम	: श्री चूनीलाल
माता	: श्रीमती सूरजबा
पिता	: श्री आशाराम
जाति	: भावसार
उपनाम	: भगत
१९०३	: कालोल में निवास, गरीबी का आरंभ।
१९०६	: मजूरी के काम।
१९१५	: तौला की नौकरी।
१९१६	: पिता की मृत्यु।
१९०५ से १९१८	: टुकड़ों में पढ़ाई के साथ कठिन मजदूरी।
१९१९	: मैट्रिक उत्तीर्ण।
१९१९-२०	: वडोदरा कॉलेज में।
दि. ६.४.१९२१	: कॉलेज का त्याग।
१९२१	: गुजरात विद्यापीठ में।
१९२१	: विद्यापीठ का त्याग। हरिजन सेवा का आरंभ।
१९२२	: मिरगी की बीमारी से तंग आकर गरुड़ेश्वर की कगार से आत्महत्या का प्रयास, दैवी रक्षा; 'हरि:ॐ' जप से रोग मिटाने का सफल प्रयोग।
१९२३	: 'तुज चरणे' तथा 'मनने' की रचना।
१९२३	: वसंतपंचमी को पूज्य श्रीबालयोगीजी द्वारा दीक्षा। श्रीसद्गुरु केशवानंद धूनीवाले दादा के दर्शन के लिए सांईखेड़ा गए। रात्रि को श्मशान में साधना और दिनभर प्रभुप्रीत्यर्थ हरिजन सेवा।
१९२४	: डाकोर में मगरमच्छ से मिलन, हिमालय की प्रथम यात्रा।

१९२६ : विवाह – हस्तमिलाप के अवसर पर समाधि का अनुभव । हरिद्वार कुंभमेले में श्रीबालयोगीजी की तलाश।

१९२८ : हरिजन आश्रम, बोडाल में सर्पदंश – परिणाम स्वरूप 'हरि:ॐ' जप अखंड हुआ। ६३ धूनी के बीच में २१ दिन की साधना।

१९२८ : 'तुज चरणे' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन।

१९२८ : साकुरी के श्रीउपासनीबाबा का नडियाद में आगमन, उनके आदेश पर साकुरी गये, वहाँ मलमूत्र के बिस्तर में लगभग ग्यारह दिन की साधना।

१९३० : मन की नीरवता का साक्षात्कार।

१९३० से ३२ : इस दौरान साबरमती, विसापुर, नासिक और यरवडा जेल में। उद्देश्य देशसेवा का नहीं, साधना का। कठोर परिश्रम और लाठी चार्ज के दौरान प्रभुस्मरण – मौन। विद्यार्थियों को समझाने के लिए विसापुर जेल में सरल गुजराती भाषा में श्रीमद् भगवद्गीता को लिखा – 'जीवनगीता'।

१९३४ : सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार। मल-मूत्र के आहार पर पचीस दिन की साधना, हिमालय की दूसरी यात्रा।

१९३४ से १९३९ : हिमालय की तीसरी यात्रा। इस दौरान हिमालय में अघोरीबाबा के पास जाना हुआ। बाद में नर्मदा धुआँधार के प्रपात के पीछे की गुफा में साधना। चैत्र मास में ६३ धुनियाँ जलाकर नर्मदा किनारे खुले में शिला पर नग्न बैठकर साधना। कराची में नर्क चतुर्दशी की रात्रि को समुद्र में शिला पर ध्यान, चालीस दिन के रोजे, समुद्र में चले जाने का हुक्म और ईद के दिन पूरे शहर में नग्न अवस्था में घूमकर घर जाने का हुक्म। शिरडी के सांईबाबा के प्रत्यक्ष दर्शन-आदेश-साधना के अंतिम चरण का मार्गदर्शन।

१९३९ : दि. २९-३-३९ : रामनवमी विक्रम संवत १९९५ काशी में निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार। हरिजन सेवक संघ से त्यागपत्र। 'मनने' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन।

१९४० : दि. ९-९-४० : हवाई मार्ग से अहमदाबाद से कराची जाने का गूढ़ आदेश।

१९४१ : माता का अवसान।

१९४२ : हरिजन सेवक संघ से अलग होने पर भी हरिजन कन्या छात्रालय के लिए मुंबई में चन्दा इकट्ठा किया। दो बार सख्त पुलिसमार – देहातीत अवस्था के प्रमाण।

१९४३ : २४ फरवरी गांधीजी के पेशाब में जहरीले जन्तुओं का अपने पेशाब में दर्शन। नैमित्तिक तादात्म्य का अनुभव।

१९४५ : हिमालय की यात्रा – अद्‌भुत घटनाएँ।

१९४६ : हरिजन आश्रम अहमदाबाद मीरा कुटिर में मौनएकांत का आरंभ।

१९४७ : आश्रम स्थापने का विचार।

१९५० : दक्षिण भारत के कुम्भकोणम् (तामिलनाडु) में कावेरी नदी के किनारे हरि:ॐ आश्रम की स्थापना (सन् १९७६ में देहत्याग के बाद आश्रम बंध कर दिया गया)।

१९५४ : सूरत के तापी नदी के किनारे कुरुक्षेत्र, जहाँगीर पुरा के श्मशान में मौनएकांत का आरंभ।

१९५५ : दि. २८/०५/१९५५ जूना बिलोदरा, शेढी नदी के किनारे (नडियाद, गुजरात)। हरि:ॐ आश्रम की स्थापना।

१९५६ : दि. २३/०४/१९५६ सूरत (गुजरात) तापी नदी के किनारे कुरुक्षेत्र, जहाँगीर पुरा में हरि:ॐ आश्रम की स्थापना।

१९६२ : हरि:ॐ आश्रम, नरोडा, अहमदाबाद, (गुजरात)

१९६२ : समाजोत्थान की प्रवृत्ति, उत्सव मनाने की संमति।

१९७० से १९७५ : शरीर में पीडाकारी वेदना के साथ सतत प्रवास, वार्तालाप और साधना का इतिहास, श्रद्धा, निमित्त, रागद्वेष, कृपा आदि भाववाही विषयों पर लेखन–प्रकाशन।

१९/०७/१९७६ : देहत्याग का संकल्प, हरि:ॐ आश्रम, नडियाद।

२२/०७/१९७६ : देहत्याग विधि का प्रारंभ, सांयकाल ४.०० बजे से, फाजलपुर, (वडोदरा, गुजरात) मही नदी के किनारे श्री रमणभाई अमीन के फार्म–हाउस में।

२३/०७/१९७६ : देहविसर्जन।